RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जुलाई-2020 | वर्ष - 12 | अंक : 6 | मूल्य : 5/-

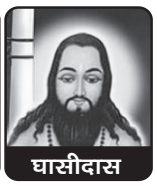

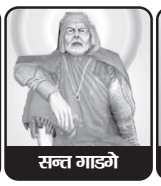

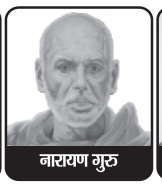

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय : 40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल : पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य : डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय : ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.) मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN0005307

हिंदू और जातिप्रथा में उसका अटूट विश्वास

हिंदू समाज–सुधारकों में कुछ उदारवादी भी हैं। इस वर्ग का कहना है कि अस्पृश्यता हिंदुओं की जातिप्रथा से भिन्न है। इस सिद्धांत के आधार पर वे कहते हैं कि जातिप्रथा नष्ट किए बिना भी अस्पृश्यता दूर कर सकती है। धर्मनिष्ठ हिंदू अस्पृश्यता दूर करने का उतना ही विरोधी है, जितना कि वह जातिप्रथा को दूर करने के विरूद्ध है। वह दो चरणों में समाज–सुधार का विरोधी है। परंतु राजनीति के खिलाड़ी हिंदुओं को यह विचार बहुत पसंद है। साफ तौर पर इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि इस प्रकार उसे संसार को दिखाने का अवसर मिलता है कि वह लोकतंत्र का सबसे बड़ा समर्थक है। दूसरी बात यह है कि अगर वह जातिप्रथा का विरोध नहीं करता है, तब सवर्ण हिंदुओं द्वारा कांग्रेस को छोड़ने का कोई भय नहीं रह जाता।

जो लोग जातिप्रथा को दूर किए बिना अस्पृश्यता–निवारण की बात करते है वे अपने तर्क की पुष्टि में 'मनुस्मृति' के दसवें अध्याय के चौथे श्लोक को उद्धृत करते हैं। इस श्लोक में मनु केवल चार वर्ण बताता है। कोई पंचम वर्ण है ही नहीं। इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि अस्पृश्य लोग शूद्रों की श्रेणी में है और जब शूद्रों को न छूने का कोई विधान नहीं है, तब अस्पृश्यों को छूने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वह व्याख्या राजनैतिक हिंदुओं को चाहे जितनी अच्छी लगे, लेकिन मनु के अभिप्राय से यह व्याख्या मेल नहीं खाती। इस श्लोक की व्याख्या अन्य प्रकार की भी हो सकती है और इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि मनु चातुर्वर्ण्य का विस्तार नहीं चाहता था और इन समुदायों को मिलाकर पंचम वर्ण की व्यवस्था के पक्ष में नहीं था, जो चारों वर्णों से बाहर थे। यह कहकर कि पंचम वर्ण नहीं है, वह यह बताना चाहता है कि जो चातुर्वर्ण्य से बाहर हैं, उन्हें वह पांचवा वर्ण बनाकर हिंदू समाज में शामिल नहीं करना चाहता था। इस बात को उसने स्पष्ट रूप से कहा है, जब वह वर्ण–बाह्य लोगों का जिक्र करता है, जिसका अर्थ है वे लोग, जो वर्ण–व्यवस्था से बाहर हैं। जरूरत ही क्या थी? वर्ण–बाह्य में भी वह दो श्रेणियां रखना चाहता था। उसने इन्हें हीन और अन्त्येवासी कहा है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि उक्त श्लोक का जैसा भाष्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है, उससे कट्टरपंथी हिंदुओं का भ्रम में नहीं डाला जा सकता कि अस्पृस्यता 'मनुस्मृति' से मेल नहीं खाती और इसका उन्मूलन हिंदू विधान के प्रतिकूल नहीं है।

मनु के श्लोक की उक्त व्याख्या पर आश्रित तर्क सामान्य और अशिक्षित हिंदू की समझ से परे है। वह तो केवल दों बातें जानता है। एक तो यह कि समाजिक व्यवहार में तीन प्रकार के बंधन हैं, जिनका पालन किया जाना चाहिए। वे हैं – (1) जातियों के बीच आपस मे खान–पान निषिद्ध, (2) जाति के बारह बेटी व्यवहार वर्जित, और (3) कुछ जातियों के लोगों छू जाने पर भी परहेज। पहले दो प्रतिबंधों से जाति बनती है और तीसरे
प्रतिबंध से अस्पृश्यता का जन्म होता है। सवर्ण हिंदू को प्रतिबंधों की संख्या से कोई गुरेज नहीं। वह प्रतिबंध के आचरण पर विशेष ध्यान रखता है। जब उससे इन प्रतिबंधों का अनुपालन नहीं करने के लिए कहा जाता है, तब वह पलट कर पूछ बैठता है, क्यों? वह कहता है, 'जब मैं पहले दो प्रतिबंधों को मानता हूं तो तीसरे का अनुपालन करने में क्या हर्ज है।' मनोवैज्ञानिक रूप में जातिप्रथा और अस्पृश्यता आपस में गुंथी हुई है और एक ही सिद्धांत पर आधारित हैं। यदि कोई सवर्ण हिंदू छूतछात बरतता है तो इसका अर्थ है कि वह जाति में यकीन रखता है।

यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए, तब यह स्पष्ट हो जाएगा कि जातिप्रथा को समाप्त किए बिना अस्पृश्यता के विनाश की आशा करना बालू की भीत बनाना है। यह विचार कि जातिप्रथा और अस्पृश्यता, दोनों अलग–अलग हैं, एक दिवा–स्वप्न है। दोनों एक ही हैं और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। अस्पृश्यता, जातिप्रथा का ही परिणाम है। दोनों को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकताा। दोनों का चोली–दामन का साथ है। एक अन्य कारण भी है, जिससे किसी भी कानूनी या बौद्धिक तरीके से अस्पृश्यता को मिटाया नहीं जा सकता। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि हिंदू समाज–व्यवस्था सीढ़ी असमानता के सिद्धांत पर आधारित है। यदि यह कहा जाए कि कुछ लोग ही इस सिद्धांत की इस विशिष्टता को समझते हैं, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि कोई समाज समाजिक असमानता पर आधारित है तो वह उस समाज से बिल्कुल भिन्न है, जो सीढ़ी दर सीढ़ी असमानता पर आधारित है पहले प्रकार का समाज एक ढुलमुल व्यवस्था है, जो आत्म–सुरक्षा में सक्षम नहीं है, जब कि दूसरे प्रकार का समाज अपने अस्तित्व को बनाए रखने में पूर्णतः सक्षम है। जो समाजिक व्यवस्था असमानता पर आधारित होती है, उसमें निचले वर्ण के लोग इस व्यवस्था का उल्लंधन करने के लिए एक दूसरे के साथ एकजुट हो सकते है। उस व्यवस्था को बनाए रखने में किसी की भी रूचि नहीं होती। उस समाजिक व्यवस्था पर सामूहिक प्रहार की संभावना नहीं होती, जो सीढ़ी दर सीढ़ी असमानता पर आधारित होती है, क्योंकि सभी पक्षों का दुख–दर्द समान नहीं होता है। यह तो तभी हो सकता है जब केवल ऊंचे और नीचे का भेदभाव हों। इस सीढ़ीनुमा व्यवस्था में शीर्ष पर ब्राम्हण हैं। सर्वोच्च से नीचे उच्चतम क्षत्रिय है। उच्चतर से नीचे उच्च वैश्य हैं। उच्च से नीचे निम्न अर्थात् शूद्र हैं और निम्न से नीचे अर्थात जो निम्नतर हैं, वे अस्पृश्य हैं। उच्चतम से सभी को गिला है और सभी उसका पतन चाहेंगे। पर नीचे वाले एकजुट नहीं हो सकते। उच्चतर वर्ग उच्चतम वर्ग से पिंड छुड़ाना चाहता है, परंतु वह उच्च निम्न और निम्नतर वर्ग के कंधे से कंधा नहीं मिला सकता कि कहीं वे उसके बराबर न हो जाएं। उच्च वर्ग उच्चतर वर्ग को गिरा देना चाहता है जो उसके ऊपर है, परंतु वह निम्न और निम्नतर से नहीं मिलेगा कि कहीं वे उसके बराबर का दर्जा न पा जाएं। निम्न वर्ग, उच्चतम, उच्चतर और उच्च वर्ग से छुटकारा पाना चाहेगा, परंतु निम्नतर से उसकी पटरी नहीं बैठेगी कि कहीं निम्नतर निम्न का दर्जा न पा ले। सीढ़ीनुमा समाज में सिवा इसके कि जो समाजिक पिरामिड में सबसे नीचे है, कोई भी पूरी तरह विशेषाधिकारों से वंचित नहीं है। दूसरों को श्रेणीगत विशेषाधिकार प्राप्त हैं। यहां तक कि निम्नतर की तुलना में विशेषाधिकार प्राप्त हैं। चूंकि हर वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त हैं, अतः हर वर्ग उस व्यवस्था को बनाए रखना चाहता है।

अस्पृश्यता अस्पृश्यों के लिए दुर्भाग्पूर्ण हो सकती है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि वह हिंदुओं के लिए एक वरदान हैं। इससे उन्हें एक ऐसा वर्ग मिलता है, जिसकी अपेक्षा वह अपने को श्रेष्ठ समझ सकते हैं। हिंदू ऐसा समाज नहीं चाहते, जिसमें कोई भी कुछ न हो। वे ऐसा समाज भी नहीं चाहते, जिसमें हर कोई कुछ भी बन सके। वे तो ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें वे ही कुछ हों और बाकी लोग कुछ भी न हों। अस्पृश्य कुछ भी नहीं है' लोगों का वर्ग है। इससे हिंदू कुछ हो जोते है। अस्पृश्यता हिंदुओं के सहज गर्व को बनाए रखती है और उन्हें ऐसा अनुभव करने का अवसर प्रदान करती है कि वे अपने को बड़ा अनुभव करने के साथ बड़े दिखें भी। यह एक अनय कारण है, जिससे हिंदू उन लोगों के प्रति अस्पृश्ता को नहीं त्यागना चाहते हैं, जो बहुतांश तो हैं, लेकिन वे छोटे लोग हैं।

अस्पृश्यता तभी दूर हो सकेगी, जब संपूर्ण हिंदू सामाजिक व्यवस्था, विशेष रूप से जातिप्रथा विलीन हो जाए। क्या यह संभव है? प्रत्येक संस्था का कोई न कोई आधार होता है। ये आधार तीन प्रकार के होते हैं, जो किसी संस्था को जीवन प्रदान किए रहते है। ये आधार है– कानूनी, सामाजिक और धार्मिक। संस्था का स्थायित्व उसके अपने आधार की शक्ति पर निर्भर करता है। जातिप्रथा के आधार की प्रकृति कैसी है? दुर्भाग्य से जातिप्रथा का आधार धार्मिक है। जातिप्रथा, वर्ग–व्यवस्था का नया संस्करण है, जिसे वेदों से आधार मिलता है। वेद हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथ है और अकाट्य हैं। मैं दुर्भाग्यपूर्ण इसलिए कहता हूं कि जिस किसी का आधार धर्म होता है, वह इस कारण ही पवित्र और सनातन बन जाता है। हिंदुओं के लिए जातिप्रथा पवित्र है और सनातन है। यदि जातिप्रथा विलीन नहीं हो सकती, तब यह आशा किस प्रकार की जाए कि अस्पृश्यता विलीन हो जाएगी?

साभार : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9, (पृष्ठ सं० 157 से 160 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

टका सिक्कों का प्रचलन और उसका फैलाव

मध्य युग में टका सिक्कों की जनसाधारण में भारी प्रसिद्धि थी और चलन भी। मुस्लिम शासकों का यह चांदी का सिक्का टका पुकारा जाता था। महमूद गजनवी का दो भाषाओं में लिखा सिक्का बहुत प्रसिद्ध था जिस पर लेख था 'अयम टंक महमूद पुरे घटें' टका सिक्के अलाउद्दीन खिलजी तथा अकबर ने भी प्रचलित किए। टका सिक्के कलचुरियों से संबंधित राजा मलाया सिंह ने 1193 ई. में प्रचलित किए जिसका वर्णन हम पीछे कर चुके हैं इस सिक्के पर एक ओर भगवती का चित्र था।

कनिंघम ने काश्मीर के नाग राजा अनंता के टका सिक्कों का उल्लेख किया है जिसने राजतरंगिनी के अनुसार ये सिक्के प्रचलित किए। उसने उक्त सिक्कों की पीतल के पंचमार्क (C.M.I., p.34) से पहचान की है। टका सिक्कों का उल्लेख दक्षिण भारत में भी पाया जाता है।

डॉ. चन्द्रशेखर गुप्त ने उक्त सिक्कों का आगे बिहार तथा उड़ीसा में फैलाव का विवरण प्रस्तुत किया है उससे उक्त जनजाति की बिहार तथा उड़ीसा में गतिविधि का पता लगता है और एक नए ऐतिहासिक तथ्य का रहस्योदघाटन होता है। वे लिखते हैं– ''तथाकथित 'पुरी कुशान' कुशान सिक्कों की भद्दी नकल प्रतीत होती है। इन सिक्कों को प्रचलित करने वाले लोगों का नाम आर. डी. बनर्जी ने 'पुरी–कुशान' अथवा 'उड़ीसा–कुशान', वी. ए. स्मिथ ने दिया है जो कि कलिंग के चौथी–पांचवीं सदी के शासक थे जब कि अलान ने उन्हें 'पुरी–जनजातीय सिक्के' कहा है जिनका संबंध तृतीय सदी का प्रारंभ काल तथा चौथी सदी के प्रारम्भिक काल से बतलाया है। सिक्कों के वैज्ञानिक (Numisatic Data) प्रमाणों के आधार पर उक्त सिक्कों के प्रचलित करने वालों की कोई सूचना प्राप्त नहीं हो सकी।

यहां हम एक अन्य प्रकार के सिक्कों की पहचान का उल्लेख करते हैं जो टान्गा मूली अथवा अत्गा मूली कहे जाते हैं जिनका वर्णन मध्येशिया के खरोष्ट्री के लेखों [JNSI, 16(1954) 220 FN.4] से मिला है। हमारे आज के ज्ञान के अनुसार यह कल्पना करना गलत न होगा कि संभवतया यह लोग भारत के पश्चिमोत्तर भाग से विस्थापित होकर पूर्व के समुद्री किनारे किसी अज्ञात कारण से गए। संभवतः यह लोग किसी राजनीतिक दबाव अर्थात आर्थिक कारणों से गए होंगे। उन्होंने विशाल क्षेत्र में जोकि उड़ीसा, मयूरभंज, सिंहभूमि, गंजम तथा बालासोर जिले से बना है अपने उपनिवेश स्थापित किए। इसकी पुष्टि इस क्षेत्र से भारी संख्या में मिले पुरी–कुशान सिक्कों की प्राप्ति से होती है। सिक्के के लेख 'टका' जिस पर ऊपर बहस की है का इससे अच्छा अन्य कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं हो सकता कि ये सिक्के टका नाम की जनजाति ने अपनी जनजाति के नाम पर प्रचलित किए थे, जैसाकि यौधेय तथा मालव लोगों ने किए थे।

ऐसा लगता है कि इन लोगों द्वारा सिक्कों पर लिखित नाम (टका) आहिस्ता–आहिस्ता उक्त सिक्कों की पहचान बन गए। अमर कोष में हमें 'टका' शब्द मिलता है और 'रुपयाध्यक्ष' भी जिसका उल्लेख 'टंक पति' (Mint Master) समालोचक क्षिरास्वामी (Bhandarkar, p.133) ने किया है। अलान ने ठीक ही अनुमान लगाया है कि जब कुशानों के पीतल के सिक्कों की आपूर्ति बंद हो गई तो कलिंग अथवा उड़ीसा के लोगों ने उसकी नकल करनी प्रारंभ कर दी क्योंकि कलिंग की खानों में पीतल की कोई कमी न थी। मृच्छकटिका की समालोचना नाटक के लिए शिवान्का पद देती है जो निश्चय ही कुशानों के तांबे के सिक्कों के लिए प्रयुक्त हुआ है।''

सिक्कों की उपर्युक्त साक्षियों से ऐसा लगता है कि टका राजपरिवार की कुछ शाखाएं कुशानों के मगध तक के भयानक आक्रमणों के परिणाम स्वरूप छोटा नागपुर, मयूर भंज, सिंह भूमि, गंजम और बालासौर जा पहुंची और अपनी राजसत्ता स्थापित की जिनकी संतान ने उड़ीसा में विभिन्न नाग राजपरिवारों के नाम से राज्य किया। जिस पर आगे शोध होना चाहिए तभी वास्तविकता का पता लगेगा। इसी प्रयास के अभियान में इस रचना के लेखक ने ईस्ट सिंध भूमि जिले में स्थित ढलभूमि गढ़ के राज परिवार से भेंट की। राज परिवार के प्रमुख अथवा युवराज दुर्गाप्रसाद सिंह देव से भेंट हुई। निवास आधुनिक कोठी अथवा हवेली जैसा, पूर्व किले तथा महलों के अवशेषों पर स्थित है। सामने पत्थर की शिला पर लिखा था 'नरसिंह गढ़ राजवाड़ी'' एक दृष्टि में वहां भूत पूर्व शासकों की जैसी शांतिपूर्ण शान झलकती थी। सारा परिवार पहली झलक में बहुत पढ़ा लिखा लगा। युवरानी का नाम कानन कुंतल है। पता लगा कानन कुंतल यहां के भूतपूर्व राजा की इकलौती बेटी है और दुर्गा प्रसाद सिंह देव विश्नपुर के राजकुमार थे। शादी होने पर वे ढलभूमि गढ़ के स्वामी बन गए। उनके तीन बेटे नंदकुमार सिंह देव, रंजनकुमार सिंह देव, अंजनकुमार सिंह देव, दो बेटी हैं मगर मात्र एक बेटी मधु से भेंट हो पाई। सारे सदस्य उच्च शिक्षा प्राप्त हैं बड़े बेटे शिक्षा विभाग में अध्यापन का काम करते हैं। अभी भी परिवार के पास 50 एकड़ भूमि है। वास्तव में ही सारे सदस्य राज परिवार के सदस्य लगते थे। नौकर हमारे सम्मुख चाय रख गया। उसी मध्य सिंह देव साहब से बातचीत हुई जो 3–4 घंटे तक चली। मैंने तक्षक परिवार से संबंधित अपनी खोज के बारे में उन्हें अवगत कराया तो वे भारी प्रसन्नता जताते हुए बोले–''आपकी पहुंच और खोज दोनों ही ठीक हैं लगता है आपका इतिहास हमारे राजवंश का ही इतिहास है और यह राजवंश अकेला नहीं हमारे नौ महल हैं यथा विष्णुपुर, रायपुर, चिलकीगढ़ ताल्चे, बड़ा बाजार, मनबाजार, खत्रा, अम्बिका नगर। चिलकीगढ़ करा राज–परिवार, महासंघ का प्रमुख था। स्पष्ट है उक्त क्षेत्र छोटा नागपुर से लेकर पुरी तक से बना है जिसमें आधा बिहार आधा उड़ीसा तथा बंगाल का कुछ हिस्सा है जहां से टका सिक्के मिले हैं परिवार ने 200 साल से अधिक राज किया।'' मुझे लगा मुझे वह मंजिल मिल गई है जिसकी मुझे तलाश थी। सिंह देव ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि उनके भूतपूर्व का संबंध 'रजक' वंश यानी धवल देव से बतलाया जाता है आपकी पहुंच ठीक है हम तक्षक ही हैं जनजातीय राजा नहीं जैसा कि अन्य इतिहासकार सोचते रहे हैं जिसे हमने कभी स्वीकार नहीं किया।'' नौ महलों का इतिहास मेरी अगली जिल्द के लिए सुरक्षित है एक बड़े खजाने की तरह। स्पष्टः प्रमाणित हो जाता है तक्षक वंश तथा उनकी अनेक शाखाओं का प्रस्तुत इतिहास एक वास्तविकता है।

आज भी सिक्के ढालने की वर्कशाप का नाम 'टकशाल' से ऐसा लगता है सिक्के ढालने की कला का सर्वप्रथम प्रारम्भ किसी न किसी रूप से टाक राज परिवार ने ही किया जिसके लिए आज हमारे पास कोई लिखित प्रमाण नहीं। ऐसा दिखाई पड़ता है भारत की प्राचीन करैन्सी की आधार शिला टाक राज परिवार ने ही रखी।

ऐसा लगता है भारत की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के निर्माण में उनका बहुत बड़ा हाथ था। इसके स्पष्ट प्रमाण हैं जीवन के हर पहलू में उन्होंने मील पत्थरों की स्थापना की। यथा अपने परिवार के नाम को शौर्य के साथ जोड़ने व स्वामित्व प्रकट करने को परिवार के नाम को भाषा, लेखन कला, शहरों, स्थानों, सिक्कों आदि के साथ जोड़ा। यहां तक कि इस परिवार ने मौर्य, गुप्त, सातवाहन, वाकाटक पदमावती जैसे बड़े–बड़े राज परिवारों को पैदा किया। प्राचीन काल में अशोक का साम्राज्य सर्वाधिक विशाल था, सातवाहनों ने लगभग 500 साल तक राज किया जो सबसे लम्बी अवधि थी, इस राज परिवार ने लगभग 2500 साल तक विभिन्न नामों, तिथियों तथा स्थानों में राज किया, ललितादित्य करकोटक एकमात्र भारतीय राजा था जिसने भारत से बाहर मध्येशिया तक अपनी विजय का झंडा फहराया तथा भारत के सम्मान को चार चांद लगाए।

राजपूतों के प्रसिद्ध राजवंश परमार का जन्म टाकों की पातालपुरी शाखा से हुआ, जो आधुनिक पाकिस्तान के हैदराबाद क्षेत्र में राज करता था जिसे मोरिय (मौर्य) तथा वहिका बतलाया गया है। इसी प्रकार शालिवाहन राजा के सिक्कों पर 'रान्नो शालिवाहनस्म' लेख मिलता है। इसका अर्थ हुआ भारत के प्रसिद्ध राणा परिवार का जन्म सातवाहन परिवार से हुआ। इस विचार की पुष्टि एक अन्य साक्षी से भी होती है। नासिक की गुफा (E.I. VIII, p.94) के एक लेख मे सातवाहन राजा यज्ञ सातकर्णी के पदनाम रन्नो (गौतमी का पुत्र सामी यज्ञ सतकरणी) दिया है इसी प्रकार वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी (E.I., Vol VII, p.71) को कार्ले के एक लेख में राजा कहा है। मालव लोग टाकों के सगे संबंधी थे अर्थात मालवों का संबंध भी इसी राज परिवार के साथ था मगर डी. आर. भंडारकर के अनुसार गण या संघ जैसे यौधेय, मालवा पंजाब के पहाड़ी क्षेत्र के राजा अथवा गोआ के राना हैं (JRAS 1908, p.540-41)

मुझे आश्चर्य होता है भंडारकर मालवाओं का संबंध पंजाब अथवा गोआ के रानों के साथ ही क्यों जोड़ना चाहते हैं? और चित्तौड़ के रानाओं के साथ क्यों नहीं? बाप्पा रावल अपनी उत्पत्ति सूर्यवंशी होने का दावा करते थे जब कि टका अथवा मालवा भी सूर्यवंशी थे। मध्ययुग में प्रसिद्ध राजपूती शूरवीरता और पराक्रम की परम्परा का जन्म संघ समाज में हुआ। अतः हमारा दावा ऐतिहासिक तथ्यों के अधिक निकट है। इन नाग वंशों के बाद के काल में अनेक जातियों को जन्म दिया जिन्हें आदिवासी होने के कारण चौथे वर्ण में धकेल दिया गया। ये जातियां थीं मेघ या कोली, रजक, लिलारी, दर्जी, छीपा, भार, राजभार, मराठा, कुर्मी तथा महार आदि।

साभार :
भारत की आदिवासी नाग सभ्यता
एक महान आश्चर्य
पृष्ठ संख्या 69 से 72
डॉ. नवल वियोगी

भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, रोजगार महानिदेशालय

राष्ट्रीय आजीविका सेवा केन्द्र (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति हेतु)

प्रादेशिक सेवायोजन कार्यालय परिसर, जी० टी० रोड, कानपुर–208005 ● ई–मेल : sreoknp@gmail.com ● फोन नं० : 0512–2242222

निःशुल्क प्रशिक्षण हेतु प्रवेश सूचना

आवेदन–पत्र प्राप्त करने की अन्तिम तिथि 21.08.2020

क्रम सं.	कोर्स/अवधि	न्यूनतम शैक्षिक योग्यता	आयु	छात्रवृत्ति/अन्य
01	ओ लेवल कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर प्रशिक्षण (NIELIT से) 01 वर्षीय	इण्टरमीडिएट	18–30	निःशुल्क किताबें/लेखन सामग्री + 1000 छात्रवृत्ति प्रति माह
02	ओ लेवल कम्प्यूटर हार्डवेयर मेंटिनेंस प्रशिक्षण (CHM) (NIELIT से) 01 वर्षीय	इण्टरमीडिएट (विज्ञान) / ITI	18–30	उपरोक्त
03	विशेष प्रशिक्षण योजना (11 माह) लिपिकीय वर्ग भर्ती परीक्षा तैयारी	इण्टरमीडिएट	18–27	उपरोक्त

नोट – पूर्ण विवरण एवं निःशुल्क आवेदन–पत्र प्राप्त करने हेतु इस केन्द्र में कार्यालय दिवस में सम्पर्क करें।

राष्ट्रीय आजीविका सेवा केन्द्र, अनु०जाति/जनजाति हेतु भारत सरकार श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के अधीन संचालित है जो कि प्रादेशिक सेवायोजन कार्यालय परिसर, जी०टी० रोड में स्थित है जिसमें शिक्षित बेरोजगार युवक/युवतियों हेतु निःशुल्क प्रशिक्षण प्रदान किये जाते हैं। प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी 01 सितम्बर, 2020 से प्रशिक्षण सत्र प्रारम्भ हो रहा है जिसके लिए आवेदन की अन्तिम तिथि 21 अगस्त, 2020 है। संचालित प्रशिक्षण में 01 वर्षीय ओ लेवल कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर कोर्स NIELIT द्वारा 12वीं पास हेतु 18–30 वर्ष की आयु होनी चाहिए। 01 वर्षीय कम्प्यूटर हार्डवेयर कोर्स NIELIT द्वारा 12वीं पास हेतु 18–30 वर्ष की आयु होनी चाहिए। विशेष प्रशिक्षण योजना 11 माह की अवधि 12वीं पास हेतु आयु सीमा 18–27 वर्ष होनी चाहिए। इस केन्द्र द्वारा अभ्यार्थियों को प्रति माह 80 प्रतिशत की उपस्थिति होने पर 1000/– रू० की छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाएगी व पूरे वर्ष में एक बार अभ्याथी को 1000/– रू० की किताबें व स्टेशनरी भी प्रदान की जाएगी।

इच्छुक अभ्यार्थी अपनी एक फोटो, सभी मूल प्रमाण पत्रों (शैक्षिक योग्यता, जाति प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र, आधार कार्ड) एवं छायाप्रति के साथ इस कार्यालय में सम्पर्क करें। पूर्ण विवरण एवं निःशुल्क आवेदन पत्र प्राप्त करने हेतु इस केन्द्र में कार्य दिवस में सम्पर्क करें।

(राज कुमार)
उप क्षेत्रीय रोजगार अधिकारी, कानपुर
रा० आ० से० के०

राष्ट्रीय आजीविका सेवा केन्द्र

अनुसूचित जाति/जनजाति हेतु

इलायापेरूमल कमेटी (1969) की संस्तुति को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने प्रशिक्षण एवं रोजगार महानिदेशालय, डी.जी.ई. एण्ड टी.के. अधीन देश के राज्यों में अनुसूचित जाति/जनजाति हेतु अध्यापन एवं मार्ग दर्शन केन्द्रों के स्थापना की है। इसी क्रम में वर्ष 1970 ये यह केन्द्र कानपुर में अनुसूचित जाति/जनजाति की सेवा में कार्यरत है।

उद्देश्य :

1. शिक्षित अनुसूचित जाति/जनजाति के बेरोजगार अभ्यर्थियो के सही मार्गदर्शन देते हुए सही दिशा निर्देशन उपलब्ध कराना।
2. अध्यापन एवं प्रशिक्षण के द्वारा बेरोजगार अनुसूचित जाति/जनजाति के अभ्यार्थियों को रोजगार पाने की क्षमता में वृद्धि करना।
3. अनुसूचित जाति/जनजाति अभ्यार्थियों के रोजगार बाजार की सूचना देना एवं रोजगार प्राप्त करने में अनेक कार्यक्रमों द्वारा विविध स्तर पर उनकी सहायता करना।

रा० आ० से० के० कानपुर की गतिविधियाँ

पंजीयन पूर्व मार्गदर्शन • सम्प्रेषण पूर्व मार्गदर्शन • साक्षात्कार पूर्व मार्गदर्शन • सामूहिक पूर्व मार्गदर्शन • व्यक्तिगत/सूचना मार्गदर्शन आत्मविश्वास कार्यक्रम • पुनरीक्षण कार्यक्रम • व्यवसायिक सूचना • प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण। • टंकण एवं आशुलिपि प्रशिक्षण • कर्मचारी चयन आयोग एवं अन्य समूह ''ग'' परीक्षा की तैयारी हेतु विशेष कम्प्यूटर ऑपरेशन प्रशिक्षण कार्यक्रम • प्रशिक्षण योजना • ओ लेवल कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर • ओ लेवल कम्प्यूटर हाईवेयर मेंटिनेंस • स्व–रोजगार • उच्च शिक्षा के साथ में भविष्यी नियोजन हेतु परामर्श • कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम • साक्षात्कार कला • अभिभावकों से विचार विमर्श • रोजगार सम्बन्धी अन्य समस्यायें।

सत्यमेव जयते
भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय

National Career Service
सही अवसर, सही समय
Right Opportunities, Right Time
नेशनल कैरियर सर्विस सेन्टर फॉर एस.सी./एस.टी.
जी. टी. रोड, कानपुर

राज कुमार
उपक्षेत्रीय रोजगार अधिकारी
रा० आ० से० के०
मो० : 7988193472

पिछले अंक का शेष भाग .... # संघ बनाम स्वतंत्रता

कोई सोचता है कि बिल के उन भागों को निर्धारित कर दिया जाए, जिसके संशोधन से राज्य के विलय–पत्र की वैधता प्रभावित नहीं हो और इसके विपरीत ऐसे विषयों को वर्गीकृत कर दिया जाए, जिनके संशोधन से विलय की वैधता प्रभावित होगी। इस प्रकार की अनुसूची तैयार करते समय इसकी परिभाषा करने में अधिक सावधानी रखी जानी चाहिए कि ऐसे क्या वैध मामले हैं, जिनमें राज्यों के शासकों को यह कहने का अधिकार है कि उनकी सहमति के बिना कोई संशोधन नहीं किया जाएगा। अलबत्ता कुछ सीमांत मामले भी होंगे। ऐसी स्थिति में लघु संशोधन किए जा सकते हैं, जिनसे वर्तमान स्थिति में कोई बड़ा अंतर वास्तव में न होगा और यह अत्यंत अतार्किक होगा, यदि राज्य इस प्रकार के संशोधनों पर आपत्ति उठाएं और यह कहें कि' हम इस विचार बिंदु पर अपने अधिकारों के लिए खड़े है, जो हमारे विलय–पत्र की वैधता को प्रभावित करता है। 'यह सही है कि कोई भी मामला जिसे मैं शक्ति का सामान्य संतुलन कह सकता हूं, जो वास्तव में कार्यकारी नियंत्रण के आरक्षण के प्रश्न तथा ऐसे मामले हैं जिन्हें गवर्नर–जनरल अपने विवेक द्वारा निपटा सकता है और ऐसे मामले जो संघ के निर्माण के लिए अधिक महत्व रखते हैं और राज्यों से जिन्हें स्वीकार करने को कहा गया है, उनकी सहमति के बिना उनमें संशोधन नहीं किया जाना चाहिए। गवर्नर–जनरल में विहित विशेष शक्तियों का कुल क्षेत्र संघ के आवश्यक लक्षणों में से एक लक्षण है। यह एक ऐसा भाग है, जिसके लिए राज्यों को यह कहने का अधिकार है, 'वह एक परिवर्तन है' अथवा 'उसे परिवर्तित किया गया है।' परंतु इससे भारत का विकास किसी प्रकार से रुक नहीं सकता है। राज्यों के साथ विचार–विमर्श के लिए कुछ विषय हो सकते है, क्योंकि वे उस संघ से पृथक किसी अन्य प्रकार के संघ की रचना करेंगे, जिसमें विलय के लिए राज्य तैयार हुए हैं।

इसलिए यह प्रश्न उठता है कि उस समय क्या होगा, जब संसद इस प्रकार के परिवर्तन करे जो अनुसूची–2 के अनुसार ऐसे परिवर्तन समझे जाते हैं जो विलय–पत्र को प्रभावित करेंगे, इस संबंध में उत्तर यह है कि राजाओं को यह अधिकार होगा कि वे संघ से बाहर हो जाएं। अतः इस परिवर्तन का परिणाम यह होगा कि संघ भंग हो जाएगा।

ऐसे कौन से परिवर्तन है, जो विलय–पत्र को प्रभावित किए बिना नहीं किए जा सकते है? मैं आपका ध्यान कुछ ऐसे उपबंधों की ओर आकर्षित करना चाहूंगा, जिनके संबंध में अनुसूची–2 में कहा गया है कि विलय–पत्र को प्रभावित किए बिना संसद द्वारा संशोधन नहीं किए जा सकते। अनुसूची–2 के अनुसार संविधान में कोई भी ऐसे परिवर्तन नहीं किए जा सकते, जिनका संबंध (1) संघ के कार्यकारी प्राधिकार का गवर्नर–जनरल द्वारा प्रयोग, (2) गवर्नर–जनरल के कार्यों की परिभाषा, (3) संघ का कार्यकारी प्राधिकारः, (4) मंत्रिपरिषद के कार्य और मंत्रियों का चयन तथा आह्वान और टनकी कार्यावधि, (5) गवर्नर–जनरल के निर्णय करने का अधिकार कि क्या उसे यह अधिकार होगा कि वह अपने विवेक से कार्य करे अथवा अपने व्यक्तिक निर्णय का प्रयोग करे, (6) बाह्य मामलों और रक्षा के संबंध में गवर्नर–जनरल के कार्य, (7) भारत अथवा भारत के किसी भाग की शांति और अमन से संबंधित गवर्नर–जनरल के विशेष उत्तरदायित्व, (8) संघीय शासन की वित्तीय स्थिरता और साख, (9) देशी राज्यों के अधिकार और उनके शासकों के अधिकार तथा उनकी प्रतिष्ठा, (10) इस अधिनियम के द्वारा अथवा इसके अधीन अपने विवेक से कार्यों का निपटान अथवा अपने व्यक्तिक निर्णय का प्रयोग, (11) गवर्नर–जनरल को महामहिम के लिखित अनुदेशों, और (12) संघीय शासन के कार्य के संबंध में गवर्नर–जनरल के लिए भारत मंत्री के तत्वाधान में अपने विवेक से सूचना के आदान–प्रदान तथा प्रेषण हेतु नियम बनाने।

अनुसूची–2 उन बातों का व्यापक संग्रह है, जिसमें यह दिया गया है कि संविधान के अंतर्गत क्या न करें। मैंने इनमें से कुछ बातों का उल्लेख किया है। परंतु ये बातें यह दिखाने के लिए पर्याप्त हैं कि संविधान में परिवर्तन करने के लिए संसद के पास कितने सीमित प्राधिकार हैं।

संसद का प्राधिकार सीमित क्यों है? इस बात को समझने के लिए यह आवश्यक है कि संसद के प्राधिकार की सही सीमाओं को जाना जाए। कानून के अनुसार संसद का प्राधिकार कानून बनाने तक होता है और यह केवल ऐसे देशों पर लागू होता है, जो सम्राट के अधीनस्थ क्षेत्र हैं। राज्य सम्राट के अधीन नहीं है और उनमें से कोई भी, यहां तक कि उनमें से सर्वोत्तम राज्य भी संसद के कानून बनाने के प्राधिकार के अधीन नहीं हैं। भारत सरकार अधिनियम से राज्यों की इस स्थिति में कोई अंतर नहीं आता। राज्य संघ के बावजूद विदेशी राज्य–क्षेत्र हैं, जैसे कि वे संघ से पूर्व थे। यह भारतीय संघ के बारे में सबसे असाधारण स्थिति हैं, अर्थात अलग–अलग इकाइयां अपने में ही विदेशी राज्य हैं। चूंकि यह अधिनियम राज्यों को सम्राट के अधीनस्थ क्षेत्र नहीं मानता, अतः संसद को कोई अधिकार नहीं है कि वह उनके बारे में कोई कानून बनाए। संसद विलय–पत्र के कारण राज्यों पर अपना प्राधिकार रखती है। ऐसा होने के कारण संसद का प्राधिकार जो उसे राज्यों ने विलय–पत्र क्षरा हस्तांतरित किया है। वहीं तक ही सीमित हो सकता है। यदि क्योंकि प्रीवी काउंसिल की ही भाषा का प्रयोग किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि कोई भी धारा अपने स्त्रोत से ऊपर नहीं उठ सकती, इसी प्रकार संसद के पास विलय–पत्र द्वारा दिए गए प्राधिकार से बढ़कर राज्यों पर प्राधिकार नहीं हो सकता। इसी से यह स्पष्ट होता है कि संशोधन के बारे में संसद का प्राधिकार सीमित क्यों है।

अभी तक जो विश्लेषण किया गया है, उससे यह प्रतीत होता है कि विलय पत्र द्वारा परिवर्तन करने के लिए संसद को दिया गया प्राधिकार सीमित है और प्राधिकार में किसी भी आधिक्य के लिए राजाओं से पूर्व सहमति ली जानी चाहिए। इस अधिनियम के उपबंधों के वैधिक प्रभाव के रूप में यह स्तब्धकारी नहीं हो सकता। परंतु इस तथ्य पर विचार किया जाए कि जिन उपबंधों में परिवर्तन करने की संसद को कोई शक्ति नहीं है, उनमें ऐसे उपबंध शामिल हैं, जो रक्षा और विदेशी मामलों को आरक्षित विषयों के वर्ग से हस्तांतरित विषयों में परिवर्तन करने से संबंधित है और उसके पास तब तक कोई शक्ति नहीं होगी, जब तक राजा लोग स्पष्ट रूप से यह पुष्टि करने के लिए सहमति न दे दें कि यह संसद का प्राधिकार है और उसे ऐसा करने की अनुमति है। आप यह अनुभव करने की स्थिति में होंगे कि ऐसे संघ के परिणाम कितने भंयकर हो सकते हैं। संघ की स्थापना का अर्थ यह है कि स्वामित्व की शक्ति संसद के हाथों से निकलकर राजाओं के हाथों में चली गई है। यह संघ राजाओं को अपना भाग्य–विधाता बनाता है। उनकी सहमति के बिना भारत राजनीतिक रूप से प्रगति नहीं कर सकता।

इस संघ के अन्य परिणामों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। मैं इस समय केवल एक परिणाम का उल्लेख करूंगा। वह यह है कि यदि इस संघ को स्वीकार कर लिया जाए तो ब्रिटिश भारत के लोगों के परिवर्तन के लिए उनके संघर्ष की स्थिति कमजोर हो जाएगी। अभी तक भारतीय लोग और ब्रिटिश संसद के बीच संघर्ष की स्थिति में ब्रिटिश संसद सदैव ही कमजोर रही है। उसके पास अपनी इच्छा–शक्ति के सिवा लोगों के परिवर्तन के अधिकार का विरोध करने के लिए कुछ भी न था। संघ के बाद विपरीत स्थिति हो जाएगी। भारतीय लोग कमजोर स्थिति में होंगे और संसद की स्थिति अधिक मजबूत हो जाएगी। संघ के बाद संसद यह कहने की स्थिति में होगी कि वह परिवर्तन की मांग को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं, परंतु परिवर्तन के लिए उसका प्राधिकार सीमित है, इसलिए परिवर्तन की मांग उठाने से पूर्व भारतीयों को राजाओं की सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिए। ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे संसद को यह मुद्दा बनाने से रोका जाए।

भारतीय उस स्थिति में क्या उत्तर देंगे, यदि वे एक बार संघ को स्वीकार कर लेते हैं और इसके परिणामस्वरूप इसमें विहित लक्ष्यार्थों को स्वीकार कर लेते हैं?

8

संघ की नियति

हम देशी राज्यों का क्या करेंगे? यह ऐसा प्रश्न है, जो प्रायः पूछा जाता है। गणतंत्र में आस्था रखने वालों की इच्छा है कि देशी राज्यों का पूर्ण उन्मूलन कर दिया जाए। जो लोग सरकार के स्वरूप के बारे में चिंता नहीं करते, वे इस विचार को रद्द कर देंगे। परंतु उन्हें भी इस विचार का पालन करना चाहिए कि जो सर्वोत्तम ढंग से कार्य करता है, वही सर्वोत्तम है। क्या यह कहा जा सकता है कि देशी राज्य सर्वोत्तम ढंग से कार्य करेंगे? मैं यह नहीं जानता कि कोई इस बारे में ऐसा सकारात्मक उत्तर देने के लिए तैयार होगा, जो सभी राज्यों पर लागू होगा। राज्यों का आंतरिक प्रशासन कुप्रबंध के लिए तिरस्कृत है। कुछ ही राज्य इस आरोप से परे होंगे।

लोग सदैव यह पूछते हैं कि राज्यों में इस प्रकार का कुप्रबंध और कुप्रशासन क्यों है? इसका प्रायः यही उत्तर दिया जाता है कि यह व्यक्तिक शासन का परिणाम है। प्रत्येक क्षेत्र से यह मांग की जाती है कि व्यक्तिक शासन के स्थान पर लोकप्रिय सरकार होनी चाहिए। मुझे इस मांग की प्रभावोत्पादकता पर भारी संदेह हैं। मैं नहीं समझता कि अधिकांश मामलों में लोकप्रिय सरकार की स्थापना से राज्यों के लोगों की परेशानियों का उपचार हो जाएगा, क्योंकि मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि लोगों की परेशानियां शासक के कुशासन से जितनी उत्पन्न होती है, उतनी ही संसाधनों के अभाव से पैदा होती हैं। कुछ ही व्यक्तियों को यह आभास है कि देशी राज्यों के संसाधन कितने कम हैं।

मैं कुछ तथ्य देना चाहूंगा। कुछ 627 राज्यों में से केवल दस राज्य ऐसे हैं, जिनका वार्षिक राजस्व एक करोड़ रुपये से अधिक है। इन दस राज्यों में से केवल पांच राज्यों का राजस्व लगभग एक करोड़ रूपये है, तीन राज्यों का राजस्व दो–सवा दो करोड़ रुपये के बीच में हैं, एक राज्य का राजस्व लगभग सवा तीन करोड़ रुपये है और केवल एक ही ऐसा राज्य है, जिसका राजस्व लगभग 8 करोड़ रुपये है। नौ राज्य ऐसे हैं, जिनका राजस्व एक करोड़ और 50 लाख रुपये के बीच में रहता है। लगभग 12 राज्य ऐसे हैं, जिनका राजस्व 25 से 50 लाख रुपये के बीच में रहता है और 30 राज्यों का राजस्व 10 से 25 लाख रुपये के बीच में रहता है। शेष 566 राज्यों में से प्रत्येक का वार्षिक राजस्व 10 लाख रुपये से कम है। फिर भी, इससे यह अनुमान नहीं लग पाता कि कुछ राज्य कितने छोटे हैं, जिनका राजस्व 10 लाख रुपये से कम है। इसीलिए कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। इन 566 राज्यों में से एक राज्य का राजस्व 500 रुपये है और उसकी जनसंख्या 206 है। एक राज्य का राजस्व 165 रुपये है और उसकी जनसंख्या 125 है। एक अन्य राज्य का राजस्व 128 रुपये है और जनसंख्या 147 है। एक राज्य ऐसा भी है, जिसका राजस्व 80 रूपये है और इसकी जनसंख्या 27 है। इनमें से प्रत्येक राज्य स्वशासी राज्य है। भले ही इनमें से एक राज्य का राजस्व 80 रुपये है और उसकी जनसंख्या 27 है।

इन राज्यों के स्वशासी होने का अर्थ यह है कि इनमें से प्रत्येक राज्य को अपने ऊपर यह उत्तरदायित्व लेना चाहिए कि वह अपनी प्रजा को ऐसी सभी सेवाओं की आपूर्ति करे, जिनका संबंध कानून और व्यवस्था के अंतर्गत राजस्व, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मामलों से हो और ऐसी सभी सेवाओं की आपूर्ति की जानी चाहिए जो सार्वजनिक कल्याण कार्य, जैसे शिक्षा, सफाई, सड़क, आदि को प्रभावित करती हैं। हम बंबई के लोग 12 करोड़ रुपये के राजस्व से शिष्ट प्रशासन के मानक को

बनाए रखने में कठिनाई महसूस करते हैं। अन्य प्रांतों में भी समान राजस्व के होते हुए भी इसी प्रकार की कठिनाई रहती है। ऐसी स्थिति में अल्प राजस्व और अल्प जनसंख्या वाले ये छोटे राज्य अपने लोगों की किसी भी मांग को कैसे पूरा कर सकते हैं? सर्वोत्तम आदर्श और उद्देश्य से प्रेरित राजा के होते हुए भी यह कार्य निराशपूर्ण है।

अब केवल यही मार्ग है कि देशी राज्यों द्वारा अधिकृत कुल क्षेत्र का पुनर्गठन किया जाए। इसका उचित समाधान यह होगा कि निश्चित आकार और निश्चित राजस्व वाले क्षेत्र को निर्धारित किया जाए और इसे एक प्रांत में संगठित कर लिया जाए तथा इन क्षेत्रों के शासकों को पेंशन दे दी जाए। केवल ऐसे ही राज्यों को बनाए रखना चाहिए, जिनके क्षेत्र और राजस्व को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे अपने संसाधनों के कारण ऐसी स्थिति में हैं कि प्रशासन का उत्तर मानक उपलब्ध करा सकते हैं। जो राज्य इस परीक्षण में खरे नहीं उतरते, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। इसके अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं है। मेरी धारणा है कि ऐसा करना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

मैं समझता हूं कि कुछ लोग यह मानेंगे कि राजा को अपने राज्य–क्षेत्र में शासन करने का अधिकार विरासत में मिला है। परंतु मैं यह जानना चाहता हूं कि राजा के अधिकार और प्रजा के कल्याण में अधिक महत्वपूर्ण क्या है? मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि राज्यों के सबसे अच्छे मित्र भी यह नहीं कहेंगे कि राजा के अधिकार प्रजा के कल्याण से अधिक महत्वपूर्ण हैं। यदि इन दोनों में संघर्ष है तो किसे हट जाना चाहिए? इस बारे में मुझे विश्वास है कि राज्यों के सबसे अच्छे मित्र भी यह नहीं कहना चाहेंगे कि राजा के अधिकारों को बनाए रखने के लिए लोगों के कल्याण की बलि दे दी जाए।

देशी राज्यों के पुनर्गठन का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं है। मेरे विचार में यह विशुद्ध प्रशासकीय और आवश्यक प्रश्न है। इसका समाधान न करना राज्यों के उन लाखों लोगों की भर्त्सना करना है, जो निरंतर दुखी और असुरक्षित जीवन बिता रहे हैं। मैं जिस उपाय का सुझाव दे रहा हूं, वह कोई क्रांतिकारी उपाय नहीं है। किसी राजा की पेंशन देना और उसके राज्य पर अधिकार करना विधिसम्मत मार्ग है और यह भूमि अधिग्रहण अधिनियम के उन नियमों के अंतर्गत है, जिनसे हम परिचित हैं और जिनके द्वारा सार्वजनिक हित के लिए निजी अधिकारों और संपत्तियों के अर्जन के लिए अनुमति दी जाती है।

दुर्भाग्यवश देशी राज्यों के प्रश्न का समाधान अभी तक इस दृष्टिकोण से नहीं किया गया हैं। एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न जिसे मैं आपके सामने रखना चाहता हूं, यह है कि संघ की स्थापना के बाद क्या इस प्रश्न का समाधान करने में आप स्वतंत्र होंगे। मैं कहता हूं कि ऐसा नहीं होगा। शायद आप पूछना चाहेंगे कि ऐसा क्यों है इस प्रकार का निष्कर्ष कैसे निकाला है?

मैं पहले ही बता चुका हूं कि संघ में सम्मिलित होने के संबंध में प्रांतों और राज्यों का अलग–अलग आधार है। प्रांतों के समक्ष कोई विकल्प नहीं है। उन्हें संघ की इकाइयां बनने के लिए सहमत होना चाहिए। राज्यों के समक्ष विकल्प है। वे संघ में सम्मिलित हो सकते हैं अथवा संघ में सम्मिलित होने से इंकार कर सकते हैं। यह स्थिति प्रांतों के दृष्टिकोण और राज्यों के दृष्टिकोण की वजह से है। संघ के दृष्टिकोण से क्या स्थिति है? क्या संघ राज्यों के प्रवेश के मामले में कोई विकल्प रखता है? क्या संघ किसी राज्य को अपने में सम्मिलित करने से इंकार कर सकता है? इसका उत्तर नकारात्मक है। संघ को इंकार करने का कोई अधिकार नहीं है। राज्य को संघ में प्रवेश करने का अधिकार है, परंतु संघ को बीस वर्ष तक के लिए किसी भी दशा में उसके प्रवेश करने से इंकार करने का कोई अधिकार नहीं है। स्थिति यह है। अब किसी भी राज्य के संघ में प्रवेश करने का क्या अर्थ है? मेरे विचार से राज्य के संघ में प्रवेश करने का अर्थ है, राज्य की प्रभुसत्ता को मान्यता देना। उसकी प्रभुसत्ता को मान्यता देने का अर्थ उसके अस्तित्व को मान्यता देना है, जिसका अर्थ यह है कि उसे अपने राज्य–क्षेत्र तथा आंतरिक प्रशासन की शक्तियों की गारंटी की सत्यनिष्ठा का अधिकार है। यह बात उस राज्य पर भी लागू होगी, जिसकी जनसंख्या 27 है और जिसका राजस्व 80 रुपये है। संघ में राज्य के प्रवेश के निहितार्थों को ध्यान में रखते हुए मैं यह सुझाव देने में पूर्णतया न्यायसंगत हूं कि देशी राज्यों के राज्य–क्षेत्र का पुनर्गठन संघ की स्थापना के बाद संभव नहीं होगा और देशी राज्यों के लोग कुशासन और कुप्रशासन के सदैव शिकार रहेंगे।

क्या ब्रिटिश भारत अब इस मामले में कुछ कर सकेगा? मेरे विचार से ब्रिटिश भारत ऐसी स्थिति में नहीं है कि इस मामले में कुछ कर सके। यदि ब्रिटिश भारत ने अपने लिए उत्तरदायी सरकार प्राप्त कर ली होती तो वह अधिकारपूर्वक यह कहने की स्थिति में होता कि किस राज्य को प्रवेश करने देना चाहिए और इसके लिए क्या शर्तें होंगी। वह संघ में प्रवेश के लिए राज्यों पर उनके राज्य–क्षेत्र को बड़ी इकाइयों में पुनर्गठित करने की पूर्व शर्त लगाने की स्थिति में होता। दुर्भाग्यवश ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी सरकार नहीं है। वास्वत में केन्द्र में उत्तरदायी सरकार रखने के उसके अधिकार को नकार दिया गया है और राज्यों के प्रवेश पर उसे आश्रित बना दिया गया है। अब ब्रिटिश भारत का भाग्य यह है कि 'कोई राज्य नहीं और कोई उत्तरदायित्व नहीं।' अब ब्रिटिश भारत ऐसी स्थिति में नहीं है कि राज्यों के सामने शर्तें रख सके। वह ऐसा तभी कर सकता था जब उसकी उत्तरदायी सरकार होती, यही कारण है कि मैंने कहा है और सदैव इस बात को स्वीकार किया है कि ब्रिटिश भारत के लोगों को सबसे पहले संघ की और ब्रिटिश भारत तक सीमित उत्तरदायित्व की मांग करनी चाहिए। यदि एक बार उसे प्राप्त कर लिया जाता है, तो चहुंओर स्वंतत्रता और श्रेष्ठ सरकार के आधार पर अखिल भारतीय संघ के लिए संभव मार्ग होगा। यह संभावना समाप्त हो जाएगी, यदि यह संघ अस्तित्व में आता है।

मैं पहले ही संघीय योजना की कतिपय कमियों की ओर आपका ध्यान आकर्षित कर चुका हूं। अभी मैंने कमी की अपेक्षा कुछ अन्य गहन बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया है। यह संघ की नियति है। जहां तक राज्यों के लोगों का संबंध है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। यह ऐसा है कि यदि एक बार कार्यान्वित कर लिया गया तो उससे कभी भी छुटकारा नहीं मिलेगा।

देशी राज्य की समस्या एक ऐसी समस्या है जिसका, मेरा विश्वास है, सर्वोपरि सत्ता द्वारा उन उपायों से निराकरण किया जा सकता है, जिनके बारे में मैंने सुझाव दिया है अथवा किसी ऐसी युक्ति से उसका समाधान किया जा सकता है, जो जनता के कल्याण में बराबर लगी हुई है, यदि वे समस्या का हल करना चाहते हैं। सर्वोपरि सत्ता हिन्दू धर्म की त्रिमूर्ति के समान है। यह ब्रह्मा है, क्योंकि इसने राज्यों को जन्म दिया है। यह विष्णु है, क्योंकि इसने उनका संरक्षण किया है। यह शिव है, क्योंकि उसमें उनको नष्ट करने की शक्ति है। सर्वोपरि सत्ता ने राज्यों के संबंध में अलग–अलग समय पर यह सभी भूमिकाएं अदा की हैं। एक समय इसने शिव की भूमिका अदा की। अब यह विष्णु की भूमिका अदा कर रही है। राज्यों के संबंध में विष्णु की भूमिका का निर्वाह लोगों का भला करने की दृष्टि से क्रूरतम कार्य है। क्या ब्रिटिश भारत को इसका एक पक्ष होना चाहिए? यह बात आपके विचार करने के लिए है।

9
राज्यों के बिना संघ

एक अन्य दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार संघ के मामले में विचार–विमर्श किया जाता है। अब मुझे उस तर्क की जांच करनी चाहिए।

यह तर्क दिया जाता है कि संविधान स्वशासी प्रांतों का सृजन करता है। प्रांतों की स्वायत्तता का अर्थ स्वतंत्रता है और इसलिए ब्रिटिश भारत की एकता का खंडन होता है। इसका विरोध किया जाना चाहिए। कुछ बाध्यकारी शक्ति दी जानी चाहिए, ताकि प्रांतों को एक साथ एकता और समानता में बांध लिया जाए और गत 100 वर्षों के ब्रिटिश प्रशासन के फलस्वरूप निर्मित एकता और समानता को अक्षुण्ण रखा जा सके।

यह तर्क काफी ठोस है, यदि इसका केवल यही अर्थ है कि स्वशासी प्रांतों का सृजन केन्द्रीय सरकार के निर्माण की एक आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि इस प्रस्ताव को सर्वत्र स्वीकृति प्राप्त होगी। सभी गोलमेज सम्मेलनों में स्वर्गीय सर मोहम्मद इकबाल ही एकमात्र ऐसे प्रतिनिधि थे, जिन्होंने केन्द्रीय सरकार की स्थापना का विरोध किया था। अन्य सभी प्रतिनिधियों ने, चाहे वे किसी भी जाति व मत के क्यों न रहे हों, उनसे मतभेद व्यक्त किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि स्वशासी प्रांतों के सृजन से केन्द्रीय सरकार की स्थापना स्पष्ट तथा अनिवार्य है और उसके बिना स्वायत्तता अराजकता में परिवर्तित हो जाएगी।

परंतु यह तर्क अपने वैधिक कार्य–क्षेत्र से परे है। यह अखिल भारत के लिए केन्द्रीय सरकार की स्थापना को न्यायसंगत ठहराता है। ब्रिटिश भारत के लिए केन्द्रीय सरकार की स्थापना को न्यायसंगत ठहराने वाला यह तर्क समस्त भारत के लिए केन्द्रीय सरकार को न्यायसंगत बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है और आपको इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या ब्रिटिश भारत में स्वशासी प्रांतों के निर्माण की दृष्टि से देशी राज्यों को सम्मिलित करते हुए समस्त भारत के लिए केन्द्रीय सरकार को न्यायसंगत कहा जा सकता है। मेरा तर्क यह है कि स्वशासी प्रांतों के निर्माण के लिए समस्त भारत हेतु केन्द्रीय सरकार के निर्माण की आवश्यकता नहीं है।

ब्रिटिश भारत में स्वशासी प्रांतों की स्थापना के लिए दो बातें आवश्यक होंगी– (1) ब्रिटिश भारत के लिए केन्द्रीय सरकार होगी, और (2) केन्द्रीय सरकार अपने स्वरूप में संघीय होगी तथा एकात्मक नहीं होगी। संघ का सार केन्द्रीय सरकार और इकाइयों में विधि द्वारा विधायी और कार्यकारी शक्तियों के विभाजन अथवा आबंटन में विहित होता है। इकाइयों और केन्द्र की शक्तियों को परिभाषित किया जाता है तथा उन्हें अलग–अलग किया जाता है। उनमें से किसी को अधिकार नहीं होता कि वे दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप करें। प्रांतो की स्वायत्तता का अर्थ है कि उनकी शक्तियों को परिभाषित किया जाता है और उनमें विहित किया जाता है। यदि प्रांतीय स्वायत्तता को वास्तविक बनाना है तो केन्द्रीय सरकार की शक्तियों को भी सीमित किया जाना चाहिए, अन्यथा वह प्रांतों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की स्थिति में होगी। यदि इस बात को सहज रूप से कहा जाए तो स्वायत्तता का अर्थ कानून द्वारा शक्तियों की परिभाषा और परिसीमन है और जहां कहीं भी इन दोनों राजनीतिक इकाइयों के बीच शक्तियों की परिभाषा और परिसीमन है, वहां संघ है और इसे होना चाहिए। अब आप यह समझेंगे कि मैंने क्यों कहा था कि कि प्रांतीय स्वायत्तता की सभी मांगों का सार है कि ब्रिटिश भारत के लिए केन्द्रीय सरकार का स्वरूप संघीय होगा। इससे अखिल भारतीय संघ न्यायसंगत नहीं ठहरता। यह क्यों आवश्यक है कि सभी राज्यों को संघ में लाया जाए। अभी तक इस प्रश्न का उत्तर शेष है और वे सभी लोग इस प्रश्न का उत्तर देंगे, जो इस अखिल भारतीय संघ को ब्रिटिश भारत संघ से अलग समझते है।

जैसा कि मैंने बताया है कि यह आवश्यक है कि ब्रिटिश भारत के लिए केन्द्रीय सरकार का स्वरूप संघीय होगा और इस तथ्य को संविधान द्वारा मान्यता दी गई है।

अनेक व्यक्ति यह देखने में असफल हो गए हैं कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 दो अलग–अलग संघ स्थापित करता है। इनमें से एक संघ ब्रिटिश भारत के प्रातों के लिए है और दूसरा संघ ब्रिटिश भारत के प्रांतों और देशी राज्यों के लिए है। यह बात आश्चर्यजनक है कि कई व्यक्तियों ने इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया। भारत सरकार अधिनियम दो संघों की स्थापना करता है और यह बात विवाद से परे है। यदि इसमें किसी को कोई संदेह है तो फिर उन्हें खंड 3 और खंड 13 को एक साथ तथा खंड 2 तथा खंड 3 को एक

साथ पढ़ना चाहिए। खंड 2 और खंड 3 यह स्पष्ट करते हैं कि एक अखिल भारतीय संघ है और उस संघ का संविधान बताते हैं। खंड 3 और खंड 13 इस बात को बताते हैं कि राज्यों से अलग ब्रिटिश भारत के प्रांतों का एक संघ है और उस संघ का संविधान दिया गया है। खंड 13 का संबंध उन उपबंधों से है, जो परिवर्ती कहलाते हैं और ब्रिटिश भारत योजना को संघ से कम नहीं बनाते, क्योंकि कानून कानून है, चाहे यह सीमित अवधि के लिए हो अथवा सार्वकालिक हो।

यह अधिनियम ब्रिटिश भारत के प्रांतों के लिए संघ की स्थापना करता है और अखिल भारतीय संघ से भी इंकार नहीं करता। इन दोनों संघों के बीच क्या अंतर है? क्या संघ की विधायी शक्तियों में कोई अंतर है? इसका उत्तर नकारात्मक है। संघीय विधायी सूची एक जैसी बनी रहती है, चाहे कार्यशील संघ ब्रिटिश भारत संघ हो या अखिल भारतीय संघ हो। समवर्ती सूची भी एक जैसी रहती है, चाहे कार्यशील संघ पहला या दूसरा हो।

क्या वित्तीय शक्तियों में कोई अंतर है? इसका उत्तर भी नकारात्मक है।

कर निर्धारण की शक्तियां भी एक जैसी रहती हैं, चाहे वह अखिल भारतीय संघ हो अथवा ब्रिटिश भारत संघ।

क्या संघ के न्यायिक संगठन में कोई परिवर्तन होता है? इसका उत्तर नकारात्मक है। संघीय न्यायालय की आवश्यकता अखिल भारतीय संघ और ब्रिटिश भारत संघ के लिए समान रूप से होती है।

यह दोनों संघ किस प्रकार एक–दूसरे से अलग हैं? इन दोनों में अंतर केवल एक ही दिशा में होता है। यदि आप यह अंतर जानना चाहते हैं, तो धारा 313 की तुलना धारा 8 से करें। इस तुलना से यह विदित होगा कि यदि संघ ब्रिटिश भारत का संघ है तो इस संघ का कार्यकारी प्राधिकार परिषद के गवर्नर–जनरल को होगा और यदि यह संघ अखिल भारतीय संघ है तो हस्तांतरित मामलों में कार्यकारी प्राधिकार विधानमंडल के लिए उत्तरदायी मंत्रियों के परामर्श पर कार्य करने वाले गवर्नर–जनरल को प्राप्त होता। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि ब्रिटिश भारत संघ है तो केन्द्र का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, जब तक कि अखिल भारतीय संघ न हो।

इसका अर्थ यह है कि राज्यों का प्रवेश ब्रिटिश भारत को उत्तरदायित्व सौंपने के लिए एक शर्त है। अतः आप पूछेंगे कि राज्यों का प्रवेश क्यों आवश्यक हैं?

सभी संघ इकाइयों की सुरक्षा और अखंडता को प्रभावित करने वाले बाह्य खतरों के कारण अस्तित्व में आए हैं। उत्तरी अमरीका के राज्य एक संघ में इसलिए परिवर्तित हो गए, क्योंकि उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा राज्यों पर अधिकार करने का भय था। कनाडा के प्रांत एक संघ में बदल गए, क्योंकि उन्हें संयुक्त राज्य द्वारा आक्रमण या विलय किए जाने का खतरा था। आस्ट्रेलिया के उपनिवेश एक संघ में इसलिए परिवर्तित हुए, क्योंकि उन्हें जापान द्वारा आक्रमण का भय था। यह स्पष्ट है कि भारतीय संघ ऐसी परिस्थितियों का परिणाम नहीं है। भारत की सीमा पर कोई भी नया आक्रमणकारी नहीं है, जो ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों पर झपटने की प्रतीक्षा कर रहा हो। यह संघ इसलिए भी नहीं है कि ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के बीच शांति स्थापित करना आवश्यक है। इस बात में कोई तथ्य नहीं है कि ब्रिटिश भारत सम्राट की प्रभुसत्ता के अधीन है और देशी राज्य सम्राट के अधिराजस्व के अधीन है। जहां तक विदेशी संबंधों की बात है, उनमें शांति और युद्ध भी शामिल है, दोनों एक और समान प्राधिकारी, अर्थात सम्राट के अधीन है। यही कारण है कि दोनों में शांति बनी हुई है। यही कारण कि ये दोनों युद्ध नहीं करेंगे और युद्ध नहीं कर सकते हैं। इस अखिल भारतीय संघ का उद्देश्य बाह्य आक्रमण से सुरक्षा अथवा आंतरिक शांति बनाए रखना नहीं हो सकता। फिर, इस संघ का क्या उद्देश्य है? राज्यों को संघ में प्रवेश करने के लिए क्यों आमंत्रित किया गया? उनके प्रवेश के लिए केन्द्र को उत्तरदायी बनाने की पूर्व शर्त क्यों लगाई गई? यदि स्पष्ट रूप से कहा जाए तो उद्देश्य यह है कि राज्यों को साम्राज्यिक हितों को समर्थन देने के लिए सामने लाया जाए और ब्रिटिश भारत में लोकतंत्र के उठते ज्वार को नष्ट कर दिया जाए। इसके सिवाय मैं अन्य कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सकता। राजाओं को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए संघ में लाने की आवश्यकता है, यह बात विवादहीन है। भारत मंत्री ने संसद में भारत सरकार के बिल पर बहस के दौरान यह स्वीकार किया कि 'हम सभी को स्थिरता और साम्राज्य की भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले राजाओं का भारत की केन्द्रीय सरकार में एक महान शक्ति के रूप में प्रवेश का स्वागत करना चाहिए।' ब्रिटिश भारत में लोकतंत्र के दमन का भले ही कोई उद्देश्य न हो, फिर भी मेरा विश्वास है कि संघ में राजाओं का प्रवेश इसका परिणाम होगा।

संघ में राजाओं के प्रवेश के लिए क्या कीमत चुकाई गई? जो कुछ मैंने कहा है उसे मैं दोहराना नहीं चाहता। यदि आप यह स्मरण करेंगे कि मैंने भेदभाव के संबंध में क्या कहा है, जो प्रतिनिधित्व, कर निर्धारण, प्रशासन, विधायिका, आदि के संबंध में राजाओं के पक्ष में किए गए हैं, तो आप यह जानेंने कि ब्रिटिश भारत द्वारा क्या लाभ प्रदत्त किए गए हैं, क्या अधिकार सौंपे गए हैं, क्या छूट प्रदान की गई है, ताकि राजाओं को प्रोरित किया जा सके कि वे संघ में सम्मिलित हो जाएं और इसके बदले में ब्रिटिश भारत को क्या मिला है?

यदि संघीय संविधान ने पूरी तरह उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था की होती तो ब्रिटिश भारत को उस मूल्य के लिए कुछ प्रतिकार मिल जाता, जो उसने राजाओं को संघ में सम्मिलित होने के लिए चुकाया है। परंतु ब्रिटिश भारत को कोई भी जिम्मेदारी नहीं दी गई, जिसका उल्लेख किया जाए। ब्रिटिश भारत को जो मिला, वह एक ऐसी पद्धति है जिसमें जिम्मेदारी को अलग–अलग भागों में विभाजित किया गया है तथा शर्तों और प्रतिबंधों द्वारा सार को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया गया है। यही नहीं कि ब्रिटिश भारत ने राजाओं के लिए संघ को सरल बनाने के लिए जो त्याग किए उसके अनुरूप उसे केन्द्र में उत्तरदायित्व प्राप्त नहीं हुआ, अपितु उसने अपने ही अधिकार से और राजाओं से स्वतंत्र रूप से औपनिवेशिक राज्य के दावे को खो दिया है। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि अखिल भारतीय संघ के कार्य–व्यापार में ब्रिटिश भारत ने क्या खोया है और वह क्या खोएगा। नया संविधान ब्रिटिश भारत के लोगों के संघर्ष का परिणाम है। यह ब्रिटिश भारत के लोगों का विद्रोह और यातनाओं का परिणाम है, जो इस संविधान के पीछे बल लगाती रही हैं। वह क्या अधिकार था, जिसे ब्रिटिश भारत के लोगों ने अपने लिए दावा किया था? जैसा कि मैंने कहा है कि उनका पहला दावा यह था कि ब्रिटिश भारत में एक श्रेष्ठ सरकार गठित की जाए। उसके बाद उन्होंने ब्रिटिश भारत के लिए उत्तरदायी स्वशासी सरकार का दावा किया। अंत में उन्होंने ब्रिटिश भारत के लिए औपनिवेशिक राज्य की मांग की। इन दावों में से प्रत्येक दावे को ब्रिटिश संसद द्वारा स्वीकार कर लिया गया। 1917 में ब्रिटिश संसद ने उत्तरदायी सरकार के लक्ष्य को स्वीकार किया। 1929 में अंग्रेजों ने औपनिवेशिक राज्य के लक्ष्य को भी स्वीकार कर लिया। अब इस बात पर बल देना चाहिए कि प्रत्येक समय पर जो दावा किया गया, वह ब्रिटिश भारत के लोगों के नाम पर किया गया। प्रत्येक अवसर पर ब्रिटिश भारत के लोगों के संबंध में इसे स्वीकार किया गया। संघ के फलस्वरूप ब्रिटिश भारत की स्थिति क्या होगी? ब्रिटिश भारत की स्थिति यह है कि केन्द्र में वे कभी भी कोई जिम्मेदारी प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि राजा लोग इस योजना के अंतर्गत नहीं आ जाते। इसका अर्थ यह है कि ब्रिटिश भारत ने अपने ही लिए अपने नाम में और राजाओं से स्वतंत्र होकर उत्तरदायी सरकार के दावे के अधिकार को खो दिया है। यह अधिकार खो दिया गया है, क्योंकि ब्रिटिश भारत को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राज्यों की इच्छाओं पर आश्रित होना पड़ा है। संघ के दोनों भागों में से ब्रिटिश भारत प्रगतिशील भाग है और राज्य प्रगतिहीन भाग है। प्रगतिशील भाग को प्रगतिहीन रथ के साथ बांध दिया जाना और उसके मार्ग तथा लक्ष्य को प्रगतिहीन भाग पर आधारित किया जाना, इस संघ का सबसे दुखद पहलू है।

इस त्रासदी के लिए आप अपने ही राष्ट्रीय नेताओं को दोषी ठहराएं। सौभाग्यवश मैं आपके राष्ट्रीय नेताओं में से नहीं हूं। सबसे ऊंची पदवी जो मुझे मिली है, वह अस्पृश्यों का नेता होना है। मैं यह भी देखता हूं कि मुझे इस पदवी से भी वंचित कर दिया गया है। ठक्करबापा, महात्मा गांधी के बाएं हाथ हैं। मैं उन्हें उनका बायां हाथ इसलिए कहता हूं कि वल्लभभाई पटेल उनके दाएं हाथ हैं। ठक्करबापा ने कुछ ही समय पूर्व यह कहा था कि मैं महारों का ही नेता हूं। वह मुझे बंबई प्रेसिडेंसी के अस्पृश्यों का नेतृत्व भी देना नहीं चाहेंगे। ठक्करबापा ने जो कुछ भी कहा, वह द्वेषपूर्ण था अथवा सत्यता के प्रेम से ओतप्रोत, इसकी मुझे कोई चिंता नहीं है, क्योंकि राजनीति मेरे लिए प्रथम प्रेम नहीं है और न मैं राष्ट्रीय नेतृत्व को अपने जीवन का लक्ष्य मानता हूं। दूसरी ओर, जब मैं देखता हूं कि आपके राष्ट्रीय नेताओं ने देश में कितनी विपदाएं उत्पन्न कर दी हैं तो मुझे यह जानकर निश्चित रूप से राहत मिलती है कि मैं उन महान नेताओं की भीड़ में सम्मिलित नहीं हूं। जब मैं यह कहता हूं कि आपके राष्ट्रीय नेताओं में से कुछ नेता संविधान निर्माण के कार्य के लिए एकदम तैयार नहीं थे तो मेरा विश्वास कीजिए। वे संविधानों के तुलनात्मक अध्ययन के बिना ही गोलमेज सम्मेलन में शामिल हुए और उन्होंने उन समस्याओं के समाधान के लिए कोई भी प्रतिपादन नहीं किया, जो उनके सम्मुख प्रस्तुत की गई। अन्य नेता निस्संदेह इस समस्या के समाधान के लिए सक्षम थे, परंतु वे उन छोटे बच्चों के समान थे, जिनमें संघवाद का आदर्श कूट–कूट कर भरा हुआ था और उन्होंने इस बात की चिंता नहीं की कि वे जो निर्माण कर रहे है, वह आदर्श संघ या संघ के नाम पर धोखा है। यह त्रासदी पूर्णतया गलत नेतृत्व के कारण उत्पन्न हुई। मैं नहीं जानता कि जो कदम उठाए गए हैं, क्या वे वापस लिए जा सकते हैं। और जो पराजय हुई है, क्या उसे फिर से विजित किया जा सकता है। परंतु मेरा मत है कि यह बात ठीक है कि ब्रिटिश भारत के लोगों को यह जानना चाहिए कि उन्होंने क्या खोया है। उनका अपना ही संघ है और वे यह अधिकार रखते हैं कि अपने संघ के लिए उत्तरदायित्व की मांग करें।

एक अन्य कारण से भी यह वांछनीय होगा कि संघ केवल ब्रिटिश भारत से ही बने। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का संघ सद्भाव से कार्य नहीं कर सकता। ये ऐसे दो तत्व है, जिनके बारे में मुझे विश्वास है कि वे ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न करेंगे। पहला तत्व ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की स्थिति में अंतर होने से उत्पन्न होता है। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि स्वतंत्र होंगे। देशी राज्यों के प्रतिनिधि राजनीतिक विभाग के बंधुआ व्यक्ति होंगे। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि मंत्रियों के प्राधिकार का विस्तार में लगे रहेंगे। राज्यों के प्रतिनिधि निश्चय ही मंत्रियों के विरूद्ध गवर्नर–जनरल के प्राधिकार को समर्थन देंगे और उन्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित किया जाएगा। यह संघर्ष अनिवार्य है और यह सुनिश्चित है कि ब्रिटिश भारत की भावनाएं देशी राज्यों के विरुद्ध कटुतापूर्ण होंगी। ठीक यही स्थिति प्रांतों के गत शासन में उत्पन्न हुई थी। निर्वाचित सदस्यों की भावनाएं पुरानी प्रांतीय परिषदों के नामांकित सदस्यों की ओर निश्चित ही शत्रुवत थीं। मुझे विश्वास है कि ऐसा अनुभव संघीय विधानमंडल में फिर से दोहराया जाएगा। ऐसा ही होना स्वाभाविक है, जब कि सदन का एक भाग यह महसूस करता है कि सदन का दूसरा भाग उसकी इच्छाओं को निष्फल करने के लिए और वह विधानमंडल के नियंत्रण के बाहर किसी शक्ति के औजार के रूप में कार्य कर रहा है। यह असंगति का एक तत्व है। असंगति का दूसरा तत्व संघ के अंतर्गत ब्रिटिश भारत के राज्यों की स्थिति में अंतर है। कानून के समक्ष समता एक मूल्यवान वस्तु, परंतु सभी व्यक्ति उसे एक ही कारण के लिए मूल्यवान नहीं

समझते। अधिकांश लोग उसे आदर्श के रूप में चरितार्थ करते हैं। कुछ ही व्यक्ति यह महसूस कर पाते हैं कि वह जटिल क्यों हैं। कानून के समक्ष समता व्यक्तियों को इस बात पर बाध्य करती है कि वे उन लोगों के साथ एक आम मुद्दा बना लें, जो समान रूप से प्रभावित हुए हैं। यदि कोई समता नहीं है और यदि कुछ ही व्यक्तियों का पक्ष लिया जाता है तथा अन्य व्यक्तियों को बोझिल कर दिया जाता है तो विशेष रूप से अनुकंपा प्राप्त व्यक्ति उन लोगों के साथ सम्मिलित होने से इंकार ही नहीं करते, अपितु वास्तव में उनके विरुद्ध कार्य करते हैं। एक तानाशाह प्राचीनकाल के सम्राटों के समान कुछ व्यक्तियों के एक के बाद दूसरे प्रांत उखाड़ देता है और अन्य व्यक्तियों के क्रोध को उत्तेजित किए बिना ऐसा कर लेता है। इसके विपरीत, अन्य व्यक्ति धावे में शामिल हो जाएंगे। परंतु मान लीजिए कि एक कानून बनाया गया कि सभी व्यक्तियों को तानाशाह को उतना धन देना होगा जितना वह मांगता है और नहीं दने पर दंड स्वरूप उनके दांत निकाल दिए जाएंगे तो सभी व्यक्ति इसके विरोध में उठ खड़े होंगे। संघ के अंतर्गत ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में कोई समानता नहीं है। देशी राज्य कई लाभों का आनंद उठाते हैं और उन्हें कई छूट मिल जाती हैं, जिनसे ब्रिटिश भारत वंचित रह जाता है। यह स्थिति विशेष कर–निर्धारण के मामले में है। इससे ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के बीच गहन कटुता उत्पन्न हो जाएगी कि सबसे पहले इस कर–भार को कौन स्वीकार करे। देश प्रेम उस समय गायब हो जाता है, जब आप किसी की जेब में हाथ डालते हैं, और मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि राज्यों के प्रतिनिधि आम आदमी की आवश्यकताओं की तुलना में अपने वित्तीय हित को वरीयता देना चाहेंगे और इसके लिए विधानमंडल के प्रति कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाना चाहेंगे।

ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को एक ही विशाल भवन में स्थान देने का क्या लाभ है, यदि वे दोनों एक–दूसरे से लड़ते रहेंगे?

ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में प्रचलित सरकारी स्वरूपों में पूर्ण असमानता है तथा उनके अंतर्निहित नियमों में भी समानता नहीं है। इन असमानताओं से देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत के बीच बैरभाव उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है, यदि ये दोनों अपने अलग–अलग क्षेत्रों में प्रगति करना चाहते हैं। जब तक देशी राज्यों में सरकार का स्वरूप ऐसे मामलों के निर्णय में कारक नहीं बन जाता है जो ब्रिटिश भारत को प्रभावित करते हैं, तो ब्रिटिश भारत को सरकार के उन स्वरूपों को सहन करना चाहिए, चाहे वे कितने ही पुराने क्यों न हों। परंतु संघ उन्हें कारक बनाता है और एक सशक्त कारक बनाता है तथा ब्रिटिश भारत उनके प्रति विमुख नहीं हो सकता। वास्तव में संघ का निर्माण ब्रिटिश भारत को इस बात के लिए बाध्य करेगा कि देशी राज्यों में प्रचलित सरकार के स्वरूपों को क्रांतिकारी बनाने के लिए अपने ही हित में आंदोलन प्रारंभ करें।

यह संघ का अनिवार्य परिणाम होगा। क्या यह ऐसी निष्पत्ति है, जिसे राज्य तत्परतापूर्ण ढंग से चाहते हैं? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर वे विचार करना चाहेंगे।

क्या ब्रिटिश भारत इस संभावना का स्वागत करता है? जहां तक मेरा संबंध है, मैं इसका स्वागत नहीं करूंगा। यह असंभव होगा कि इतने बड़े पैमाने पर युद्ध छेड़ा जाए। राज्य इतने अधिक है कि वे केन्द्रित आक्रमण नहीं होने दे सकते। राज्य इस संरचना का एक भाग है, अतः आप उन पर आक्रमण नहीं कर सकते और अपने आक्रमण को संवैधानिक कार्य नहीं बता सकते। दूसरे, आप अपने को ऐसी कठिनाई में क्यों डालते हैं? कभी–कभी ऐसा होता है कि एक व्यक्ति यह सोचता है कि वह संपत्ति खरीद रहा है, जब कि तथ्य यह है कि वह मुकदमेंबाजी मोल ले रहा है। ब्रिटिश भारत के लिए संघ को स्वीकार किया जाना विपत्ति को खरीदने के समान है। तीसरे, यह संविधान एक बंदोबस्त है, जिसमें से औपनिवेशिक राज्य को अधिकांशतया निर्ममतापूर्वक निकाल दिया गया है, जो केवल वर्तमान समय के लिए हीं नहीं, अपितु भविष्य के लिए भी है।

किसी भी दृष्टिकोण से इस बात को देखा जाए तो मेरे लिए सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण तरीका यह है कि राज्यों को वहीं छोड़ देना चाहिए, जहां वे हैं। ब्रिटिश भारत को अपने विकास और अपने लिए संघ की ओर बढ़ना चाहिए।

10

विभिन्न दृष्टिकोणों से संघ

अलग–अलग लोग इस संघ को विभिन्न दृष्टिकोणों से देख रहे हैं। राजाओं का भी अपना दृष्टिकोण है। हिन्दुओं, मुसलमानों और कांग्रेस का भी अपना दृष्टिकोण है। सौदागार और व्यापारियों का भी अपना दृष्टिकोण है। इनमें से प्रत्येक का दृष्टिकोण अपने विशेष हितों के कारण है।

इस संघ में राजाओं का क्या हित है? यदि आप राजाओं के उद्देश्य को समझना चाहते हैं तो आपको बटलर कमेटी की कार्यवाहियों को देखना चाहिए। राजाओं ने सर्वोपरि सत्ता के सिद्धांत के अंतर्गत अपने संधि के अधिकारों पर भारत सरकार के राजनीतिक विभाग के अतिक्रमण की शिकायत की थी। राजा इस बात पर जोर दे रहे थे कि राजनीतिक विभाग को राज्यों के विरुद्ध अधिक अधिकार नहीं थे, सिवाय उन अधिकारों के जो उनके और ब्रिटिश सरकार के बीच की गई संधियों द्वारा दिए गए थे। दूसरी ओर, राजनीतिक विभाग का यह दावा था कि संधियों में दिए गए अधिकारों के अतिरिक्त सम्राट को भी ऐसे अधिकार प्राप्त थे, जो राजनीतिक व्यवहारों और प्रथाओं में संदर्भ योग्य थे। इस विवाद का समाधान करने के लिए भारत मंत्री ने बटलर कमेटी की नियुक्ति के लिए अपनी सहमति प्रदान की। राजाओं को यह आशा थी कि बटलर कमेटी उनके विचारों को स्वीकार कर लेगी और संधियों में दिए गए अधिकारों तक सर्वोपरि सत्ता के कार्य–क्षेत्र को सीमित कर देगी। दुर्भाग्यवश राजा लोग इस संबंध में हताश हो गए, क्योंकि बटलर कमेटी ने यह रिपोर्ट दी कि प्रभुसत्ता सर्वोच्च है और इसकी न तो कोई परिभाषा की जा सकती है और न इसका सीमांकन। बटलर कमेटी के निर्णय का अर्थ यह था कि राजा लोग भारत सरकार के राजनीतिक विभाग के पूर्णतया अधीन थे और वे लोग इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से छुटकारा पाने की तलाश में लगे हुए थे, जिसमें कि वे घिर गए थे और उन्होंने यह ठीक ही पाया कि केवल एक समाधान है जो उन्हें राजनीतिक विभाग के अत्याचार से छुटकारा दिला सकता है और वह संघ है, क्योंकि जिस सीमा तक संघीय प्राधिकार बना हुआ था, उससे राजनीतिक विभाग का प्राधिकार प्रयोग किया जा सकेगा, क्योंकि संघीय विधानमंडल और संघीय कार्यपालिका में उनका स्वर मुखर होगा, उन्होंने संघ के पक्ष में निर्णय लिया। राजाओं की समस्या के संघीय समाधान ने उनके समक्ष दो लाभ प्रस्तुत किए। इनमें से पहला यह था कि राज्यों की ऐसी आंतरिक स्वायत्तता सुरक्षित होगी, जिसके लिए वे अधिक व्यग्र थे, क्योंकि इकाइयों को संघीय बनाने के सार यह है कि उनके हाथों में सभी शक्तियां बनी रहें, सिवाय उन शक्तियों के जिन्हें उन्होंने स्वेच्छा से केन्द्र को सौंप दिया है और जिन पर वे स्वयं भी किसी सीमा तक नियंत्रण करने के अधिकारी हैं। संघ का दूसरा लाभ यह था कि संघीय प्राधिकार के कार्य–क्षेत्र तक प्रभुसत्ता समाप्त हो जाएगी। इसलिए राजाओं का उद्देश्य स्वार्थ से भरा हुआ था और उनका प्रमुख उद्देश्य यह था कि वे यथासंभव भारत सरकार के राजनीतिक विभाग के प्राधिकार से मुक्त हो जाएं। यह राजाओं के प्रमुख हितों में से एक हित था। राजाओं को सरुक्षित रखने के लिए एक दूसरा हित यह था कि यथासंभव उनके नागरिक और सैन्य सरकार की अपनी शक्तियों को सुरक्षित किया जाए। वे संघ को इतना दुर्बल बनाना चाहते थे, जितना कि संभव था, ताकि संघ उन पर कठोरता से व्यवहार न करे। राजाओं का हित दोहरा है। वे प्रभुसत्ता से बचना चाहते थे। दूसरे, वे नहीं चाहते थे कि संघ के प्राधिकार के अंतर्गत उन पर अधिक आधिपत्य रखा जाए। राजाओं ने संघ पर विचार करते हुए अपने सामने दो प्रश्न रखे। यह संघ उन्हें प्रभुसत्ता के अत्याचार से कितना बचा पाएगा? दूसरे, संघ की यह योजना उनकी प्रभुसंपन्नता और आंतरिक सरकार की उनकी शक्तियों को किस सीमा तक ले लेगी? वे पहले दृष्टिकोण से बहुत कुछ पाना चाहते थे और दूसरे में कम से कम देना चाहते थे।

मुसलमानों का जो हित था उसने उनकी पूर्ण दृष्टि को न केवल रंग दिया, बल्कि उसे इतना सीमित कर दिया कि उन्होंने कुछ और देखने की चिंता ही नहीं की। उनका हित अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में ही था। वे अपने बचाव के लिए केवल यही जानते थे कि हिन्दू बहुसंख्यक वर्ग से कैसे छुटकारा पाया जाए। इसके फलस्वरूप उन्होंने अलग निर्वाचक–मंडल तथा प्रतिनिधित्व में अधिकता के साथ सीटों के आरक्षण के लिए मांग की। 1930 में उन्होंने यह पाया कि मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग को बचाने के लिए एक अन्य प्रभावशाली तरीका है। वह यह था कि नए प्रांत बना लिए जाएं, जिनमें बहुसंख्यक हों और हिन्दू अल्पसंख्यक। यह उन प्रांतों के प्रतिक्रियास्वरूप था, जहां हिन्दू बहुसंख्यक थे और मुसलमान अल्पसंख्यक वर्ग के थे। उन्होंने इस पद्धति पर इसलिए बल दिया, क्योंकि उन्होंने महसूस किया कि प्रांतों के संतुलन की इस पद्धति से मुसलमानों को मुस्लिम बहुल प्रांतों में हिन्दू अल्पसंख्यकों को अपने प्रांतों में बंधक जैसी स्थिति में रखने का अवसर मिलेगा, ताकि हिन्दू बहुसंख्यक वर्ग उन प्रांतों में मुसलमानों के साथ भला व्यवहार करें, जहां मुसलमान अल्पसंख्यक वर्ग के थे। उनका सबसे प्रबल हित यह था कि मुस्लिम बहुल प्रांत बना दिए जाएं और उन्हें मजबूत तथा शक्तिशाली बनाया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुसलमानों ने सिंध को अलग कराने की मांग की और उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत में उत्तरदायी सरकार गठित कराने के लिए कहा, ताकि मुसलमान चार प्रांतों पर अपना शासन कर सकें। उन्होंने प्रांतों को शक्तिशाली बनाने के लिए इस बात पर जोर दिया कि केन्द्र को कमजोर कर दिया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के साधन स्वरूप मुसलमानों ने यह मांग की कि शेष शक्तियों को प्रांतों को दे दिया जाना चाहिए और केन्द्र में हिन्दू प्रतिनिधित्व को कम कर देना चाहिए। ब्रिटिश भारत की कुल नियत सीटों में से एक तिहाई सीटों को ही मुसलमानों को न दिया जाए, बल्कि राजाओं के लिए कुल आबंटित सीटों में से भी एक तिहाई सीटें मुसलमानों को दे दी जाएं।

हिन्दू महासभा के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने वाले हिन्दुओं को केवल एक बात की चिंता थी कि इस स्थिति का कैसे मुकाबला किया जाए, जिसे वे मुसलमानों की धमकी मानते थे। हिन्दू महासभा ने यह महसूस किया कि राज्यों का विलय हिन्दू शक्ति की अभिवृद्धि है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी बात का उनके लिए कोई महत्व नहीं था। उनके मत के अनुसार किसी भी मूल्य पर संघ की स्थापना आवश्यक थी।

एक अन्य वर्ग भारतीय व्यापारी समुदाय है, जिसका दृष्टिकोण विचार करने योग्य है। वाणिज्यिक समुदाय निस्संदेह भारत जैसे विशाल देश में एक लघु समुदाय है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समुदाय का दृष्टिकोण वस्तुतः किसी अन्य समुदाय के दृष्टिकोण की तुलना में अधिक निर्णायक है। यह समुदाय कांग्रेस का समर्थक रहा है। यह वही समुदाय है, जो कांग्रेस को संघर्ष के लिए संचालन–शक्ति उपलब्ध कराता है और यह जानता है कि कांग्रेस कैसे उनकी इच्छा की पूर्ति करा सकती है। व्यापारी समुदाय मुख्यतया वाणिज्यिक विभेद रुचि रखता है, और उसके साथ ही साथ विनिमय दर को भी घटाना चाहता है। यह बहुत ही संकुचित और सीमित दृष्टिकोण था। भारतीय व्यापारी समुदाय इस बात के लिए तत्पर है कि यूरोपवासियों को व्यापार और वाणिज्य से अलग कर दिया जाए और वह उनका स्थान ले ले। उसका दावा है कि वह यह सब कुछ राष्ट्रीयता के नाम पर कर रहा है। वह चाहता है कि विनिमय दर घटा दी जाए और इस प्रकार वह अपने विदेशी व्यापार में लाभ

उठाना चाहता है। यह भी वह राष्ट्रीयता के नाम पर करने का दावा करता है। सौदागर और व्यापारी अपना ही लाभ कमाने के अतिरिक्त कोई अन्य विचार नहीं रखते।

मैं कांग्रेस के बारे में क्या कहूं? उसका क्या दृष्टिकोण था? मुझे विश्वास है कि मैं तथ्यों की न तो अतिशयोक्ति कर रहा हूं और न उनके बारे में कोई भ्रम पैदा कर रहा हूं, जब मैं यह कहता हूं कि गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस का दृष्टिकोण था कि कांग्रेस ही भारत में अकेली पार्टी है और अन्य किसी पार्टी ने अपना स्थान नहीं बनाया, अतः ब्रिटिश सरकार को केवल कांग्रेस से ही समझौता करना चाहिए। गोलमेज सम्मेलन में श्री गांधी के गीत की यही टेक थी। वह अपने इस दावे को स्थापित करने में ही व्यस्त रहे कि उन्हें भारत के प्रमुख के रूप में ब्रिटिश द्वारा मान्यता दी जाए और वह यह पूर्णतः भूल गए कि महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं था कि किसके साथ समझौता किया जाना चाहिए, अपितु समझौते की शर्तें क्या हैं। जहां तक समझौते की शर्तों का संबंध है, श्री गांधी अपने इस कार्य में असमर्थ रहे। जब वह लंदन गए तो वह यह भूल गए कि उनके सामने वे लोग नहीं है, जो उनके पास परामर्श लेने के लिए आते हैं और उनका आशीर्वाद लेकर वापस चले जाते हैं। परंतु उनके सामने ऐसे व्यक्ति थे, जो उन्हें ऐसा व्यक्ति समझेंगे, जैसा कि एक अधिवक्ता जिरह कक्ष में किसी व्यक्ति को समझता है। श्री गांधी यह भी भूल गए कि वह एक राजनीतिक सम्मेलन में जा रहे थे। वह वहां ऐसे गए, जैसे कि वह किसी वैष्णव मंदिर में नरसी मेहता के गीत गाते हुए जा रहे हैं। जब मैं इस पूरे प्रकरण के बारे में विचार करता हूं तो मैं आचर्श्यचकित रह जाता हूं कि क्या किसी देश ने राष्ट्रीय समझौते की शर्तों पर विचार–विमर्श के लिए ऐसा प्रतिनिधि भेजा, जो श्री गांधी जैसा अयोग्य व्यक्ति हो। श्री गांधी इस समझौते में विचार–विमर्श करने के लिए कितने अयोग्य थे, यह तथ्य इस बात से स्पष्ट होता है कि कोई भी यह महसूस कर सकता है कि भारत का राजदूत केवल प्रांतीय स्वायत्तता का समझौता करके भारत लौटने को तैयार था, जब कि वास्तव में उन्हें स्वतंत्रता के आधार पर विचार–विमर्श के लिए भेजा गया था। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसने गोलमेज सम्मेलन में भारत के हितों के लिए ऐसी दुखद स्थिति पैदा की हो, जैसी कि श्री गांधी ने पैदा कर दी थी। उनके बारे में जितना कम कहा जाए, उतना अच्छा है।

इन हितों में से प्रत्येक हित संघीय योजना से, जैसी कि आज संघीय योजना की स्थिति है, कितना संतुष्ट महसूस करता है, इसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है। फिर भी, कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि क्या केवल ये ही दृष्टिकोण हैं, जिन पर यह निर्णय करने के लिए विचार किया जाए कि हम संघ का क्या करेंगे? मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि ऊपर बताए गए दृष्टिकोणों के अलावा अन्य दृष्टिकोण भी है, जिनकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। स्वतंत्र व्यक्ति का भी दृष्टिकोण होता है। गरीब आदमी का भी दृष्टिकोण होता है। वे संघ के बारे में क्या कहना चाहते हैं? संघ की व्याख्या में इन लोगों की बात नहीं कही गई है, फिर भी ये ऐसे लोग हैं, जिनका इस सबसे गहन संबंध है। क्या स्वतंत्र व्यक्ति यह आशा कर सकता है कि संघीय संविधान उसकी स्वतंत्रता में एक अवरोध नहीं होगा? क्या गरीब व्यक्ति यह महसूस करता है कि संविधान पुराने मूल्यों पर पुनर्मूल्यांकन करने योग्य उसे बना सकेगा और जो विहित अधिकार है, वे क्या घटाए जा सकेंगे? मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि यह संघ अपने अस्तित्व में आता है तो स्वतंत्र व्यक्ति के लिए यह अनवरत चलने वाला संकट हो जाएगा और गरीब व्यक्ति के मार्ग में रोड़ा बन जाएगा। ऐसी स्थिति में क्या स्वतंत्रता हो सकती है, यदि आपको राजाओं की निरंकुशता के अधीन रहना हो? क्या बेहतर आर्थिक सुधार हो सकेंगे, जब द्वितीय चैंबरों के अपने ही हित में विहित अधिकार हों और जब संपत्ति को प्रभावित करने वाले कानून को प्रस्तुत करने के पहले और उसके पारित हो जाने के बाद, दोनों ही स्थितियों में सरकार द्वारा स्वीकृति लेनी हो?

11

निष्कार्ष

शायद मैंने आपका इतना अधिक समय ले लिया, जितना कि मुझे नहीं लेना चाहिए था। आप मुझे यह कहने की अनुमति देंगे कि इसमें पूरी तरह मेरा ही दोष नहीं है। एक कारण यह है कि विषय विशाल था, जिसके लिए मुझे आपको अधिक समय तक संबोधित करना पड़ा।

फिर भी, मैं यह स्वीकार करता हूं कि एक अन्य कारण भी है, जिसने मुझे इस भाषण को कम करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया। आज हम ऐसे समय में खड़े हैं, जहां प्राचीन युग समाप्त होता है और नए युग का श्रीगणेश होता है। पुराना युग रानाडे, अगारकर, तिलक, गोखले, वाच्छा, सर फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का युग था। नया युग श्री गांधी का युग है और यह पीढ़ी गांधी की पीढ़ी कहलाती है। यदि कोई व्यक्ति पुराने युग के बारे में कुछ भी जानता है और नए युग के बारे में भी कुछ जानता है तो मैं समझता हूं कि इन दोनों में निश्चय ही अंतर है। नेतृत्व में पर्याप्त परिवर्तन आया है। रानाडे के युग में नेताओं ने भारत के आधुनिकीकरण के लिए संघर्ष किया। गांधी के युग में नेता देश को पुरातन का जीवित नमूना बना रहे हैं। रानाडे के युग में नेता अपने विचारों और कृत्यों के सुधार के उपाय के लिए अनुभव पर आश्रित रहा करते थे। आज के युग में नेता अपने मार्गदर्शक की अंतरात्मा के स्वर पर निर्भर करते हैं। उनकी विचार पद्धति में ही अंतर नहीं, अपितु बाह्य छवि से संबंधित उनके दृष्टिकोण में भी अंतर है। पुराने युग के नेता इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि वे पूर्ण परिधान धारण करें, परंतु आज के युग में नेता लोग अर्द्धनग्र रहने में आनंद उठाते हैं। गांधी युग के नेता इस अंतर से भी भली–भांति अवगत हैं। परंतु अपने दृष्टिकोण और अपनी छवि से झेंपने की बजाए दावा करते हैं कि गांधी का भारत रानाडे के भारत से अधिक श्रेष्ठ है। उनका कहना है कि श्री गांधी का युग उत्तेजना और आशा का युग है, जब कि श्री रानाडे का युग ऐसा नहीं था।

रानाडे युग और गांधी युग, दोनों में ही जो व्यक्ति रहें हैं, वे स्वीकार करते हैं कि उन दोनों युगों में अंतर है। इसके साथ ही वे इस बात पर भी बल देना चाहेंगे कि यदि रानाडे का भारत कम उत्तेजित था तो वह अधिक ईमानदार था, यदि रानाडे का भारत कम आशा रखता था तो वह अधिक प्रबुद्ध था। रानाडे युग ऐसा युग था, जिसमें पुरुष और महिलाएं अपने जीवन के तथ्यों के अध्ययन और जांच करने में गंभीरता से व्यस्त थे और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि रूढ़िवादी जनसमूह के विरोध में उन्होंने अपने जीवन और चरित्र को ऐसा स्वरूप दिया जो उस दृष्टिकोण के अनुसार था, जिसे उन्होंने अनुसंधान के फलस्वरूप प्राप्त किया था। रानाडे के युग में राजनीतिज्ञ और विद्यार्थी के बीच में संबंध विच्छेद नहीं था, जैसा कि गांधी युग में पाया जाता है। रानाडे में युग में यदि कोई राजनीतिज्ञ विद्यार्थी नहीं था तो उसे अवांछित व्यक्ति माना जाता था, चाहे उसे खतरा न समझा जाए। श्री गांधी के युग में सीखने की प्रवृत्ति को यदि हेय नहीं समझा जाता है तो निश्चय ही उसे राजनीतिज्ञ की आवश्यक योग्यता नहीं माना जाता है।

मेर विचार से इसमें कोई संदेह नहीं है कि गांधी युग भारत का अंधकार युग है। यह ऐसा युग है, जिसमें लोग भविष्य में अपने आदर्शों को फलीभूत देखने की बजाए पुरावशेष की ओर लौट रहे हैं। यह ऐसा युग है, जिसमें लोगों ने अपने बारे में विचार करना बंद कर दिया है और चूंकि उन्होंने विचार करना बंद कर दिया है, इसलिए उन्होंने अपने जीवन के तथ्यों का अध्ययन और उनकी

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

की आवश्यकता है, जो पूर्ण होते हुए भी लंबा नहीं है, जो सही होते हुए भी हठधर्मी नहीं है, ताकि इसको संघीय योजना के उद्घाटन से उत्पन्न होने वाले खतरों के प्रति सचेत कर दिया जाए। यही कार्य है, जिसे मैंने अपने भाषण को तैयार करने में विचार बिंदु बनाया है। क्या मैं इस कार्य में असफल या सफल रहा? यह बात आपके सोचने, समझने और कहने के लिए हैं। यदि यह भाषण लंबा है और इस कमी को विचारों की गहनता से पूरा नहीं किया गया है तो मैं केवल यह कह सकता हूं कि मैंने अपने अर्जित ज्ञान तथा अनुभव से अपने कर्तव्य को निभाने का प्रयास किया है।

मैं संघीय सरकार का विरोधी नहीं हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने एकल सरकार के लिए पक्षपात किया है। मेरा विचार है कि भारत को इसकी आवश्यकता है। परंतु मैं यह महसूस करता हूं कि संघीय सरकार अनिवार्य हैं, यदि प्रांतीय स्वायत्तता दी जाती है। परंतु मैं भारत सरकार अधिनियम में दी गई संघीय योजना से अधिक भयभीत हूं। मैंने पर्याप्त कारण देकर अपने विरोध का औचित्य सिद्ध किया है। मैं चाहता हूं कि आप सभी इस बात की जांच करें और अपने निष्कार्षों पर पहुंचें। फिर भी, हमें यह महसूस करना चाहिए कि प्रांतीय स्वायत्तता का मामला संघीय योजना से कहीं भिन्न है। मैं उन लोगों से दो बातें कहना चाहता हूं, जो ये विचार करते हैं कि संघ स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। यदि गवर्नर–जनरल उन्हीं आधारों पर यह आश्वासन दें, जैसा कि गवर्नरों द्वारा विचार किया गया था कि वे अपने विशेष उत्तरदायित्वों में अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे। सबसे पहले मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि गवर्नर–जनरल इस प्रकार का आश्वासन नहीं दे सकते, क्योंकि वह सम्राट के हित में ही इन शक्तियों का प्रयोग नहीं करते, अपितु राज्यों के हित में भी इन शक्तियों का उपयोग करते हैं। दूसरे, यदि उन्होंने ऐसा किया तो इससे संघीय योजना की प्रकृति में परिवर्तन नहीं हो सकता। जो व्यक्ति यह सोचते हैं कि नामाकंन से निर्वाचन तक राज्य के प्रतिनिधित्व की पद्धति में परिवर्तन संघ को कम आपत्तिजनक बनाएगा, उनसे मैं यह कहना चाहता हूं कि वे मामले के विवरण की ओर अधिक ध्यान दे रहे हैं, जब कि यह मामला आधारभूत हैं। हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि आधारभूत क्या होता है और आधारभूत क्या नहीं होता। इस बारे में कोई भूल नहीं होनी चाहिए और इस बारे में कोई भ्रम नहीं होना चाहिएं हमने इन दोनों स्थितियों के बारे में पर्याप्त जान लिया है। असली प्रश्न उत्तरदायित्व का विस्तार और उसकी समृद्धि का है। क्या यह संभव है? यही मूल प्रश्न है। हमें यह भी महसूस करना चाहिए कि प्रांतीय स्वायत्तता से चिपके रहने और केन्द्र में उत्तरदायित्व के प्रश्न को लटकाए रखने से कोई लाभ नहीं है। मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि केन्द्र में वास्तविक उत्तरदायित्व के बिना प्रांतीय स्वायत्तता सारहीन है।

हमें अपने दृष्टिकोण पर बल देना चाहिए। इस संबंध में विचार–विमर्श करने के लिए यह उचित स्थान नहीं है। यदि मैंने आपको इस संघीय योजना के खतरों के बारे में सम्यक विचार देने में सफलता पाई है तो यह पर्याप्त है।

साभार :
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय
खण्ड–2, पृष्ठ संख्या 57 से 136
डॉ. अम्बेडकर